CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समन्वय ही मानव धर्म है

S-4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समन्वय ही मानव-धर्म है

[धार्मिक पृष्ठ-भूमि पर रचित हितकारी लेख]

लेखक :
ओम् प्रकाश त्रिखा

१९६९

ग्राम भावना प्रकाशन,
आश्रम, पट्टीकल्याणा (करनाल)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक :
ओम्प्रकाश त्रिखा,
ग्राम भावना प्रकाशन,
गांधी स्मारक निधि,
आश्रम, पट्टीकल्याणा (करनाल)

प्रथम संस्करण : २०००
मूल्य : रुपये 5 = 0 0

मुद्रक :
जगदीश चन्द्र 'जौहर',
ग्राम भावना प्रिंटिंग प्रेस,
गांधी स्मारक निधि,
आश्रम, पट्टीकल्यणा (करनाल)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

विषय		पृष्ठांक
१. प्रार्थना	...	१
२. ईशावास्योपनिषद्	...	४
३. गीता-सारतत्त्व	...	११
४. गीता का नैतिक आचरण	...	२३
५. प्लेटो के स्वप्न का आदर्श राज्य	...	२६
६. भगवान् महावीर और उनका सन्देश	...	३२
७. भगवान् बुद्ध और बौद्ध वाङ्मय	...	४१
८. प्रेम-अवतार ईशु ख्रिस्त	...	४७
९. हज़रत मुहम्मद और इसलाम	...	५३
१०. इसलाम और सामाजिक भाईचारा	...	५९
११. सूफ़ीमत	...	६७
१२. महा-मानव संत कबीर	...	७८
१३. शेख फ़रीद	...	८३
१४. गुरु नानक और उनकी शिक्षा	...	९१
१५. प्रभु-भक्त सूरदास	...	९७
१६. हज़रत बुल्हे शाह की सिखावन	...	१०३
१७. दादू दयाल	...	१११
१८. नरसी मेहता	...	११४
१९. युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द	...	११६
२०. गांधीजी की सीख	...	१२२
२१. एकादश व्रत : सर्व धर्म सार	...	१२६
२२. शान्ति मार्ग	...	१३१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

समन्वय से ज्ञान की प्राप्ति होती है। संसार में अनेक धर्म हैं। उनमें तत्त्वज्ञान भरा पड़ा है। तत्त्वज्ञान का विरोध होता है, तो उससे अशान्ति बढ़ती है। तत्त्वज्ञान का समन्वय होता है, तो शान्ति के वातावरण का निर्माण होता है। व्यक्ति और समाज का समन्वय होता है, तो सामाजिक भाईचारे की भावना पैदा होती है। शान्ति-मार्ग के लिए देह और आत्मा का समन्वय ही आवश्यक है। मानव-जीवन के दो मूल्य माने गये हैं—न्याय की रक्षा और शान्ति की रक्षा। दोनों का समन्वय अर्थात् ज्ञान और कर्म का समन्वय। गीता समन्वय का उत्तम ग्रन्थ है। ज्ञान-योग, कर्म-योग, अनासक्ति-योग और भक्ति-योग चारों के समन्वय से साम्य-योग बनता है।

विज्ञान ने विश्व को छोटा बना दिया है। विश्व की मानव-जातियाँ राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में एक-दूसरे के नज़दीक आ गयी हैं। संकीर्णता का अर्थ मृत्यु है। संकीर्णता चाहे जाति, धर्म, भाषा, वर्ग, राष्ट्र किसी कारण से हो, आज के विज्ञान के युग में विनाश का ही कारण है।

भारतीय दर्शन में विश्वशान्ति, विश्व-चेतना का विचार प्राचीन काल से रहा है। वेद, उपनिषद् और दूसरे धर्म-ग्रन्थ इसके साक्षी हैं। बुद्ध भगवान् ने अहिंसा, पर-उपकार और प्रेम का उपदेश हमें दिया था। यह उपदेश सारे संसार के लिए था। महा-मानव महावीर ने ब्रह्मचर्य, अनेकान्तवाद और अहिंसा का सन्देश हमें दिया था। ब्रह्मचारी अर्थात् ब्रह्म में विचरनेवाला, संयमी, शुद्ध, पवित्र; अनेकान्त यानी सत्य असीम और अनन्त है; अहिंसा अर्थात् शान्ति की अवरोधी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्ति, सबके साथ प्रेम से रहना, दूसरों के जीवन की रक्षा करना, आत्मपरीक्षण करना, प्राणिमात्र की एकता के लिए काम करना, सब में अपनी आत्मा को देखना, दूसरों के लिए सच्चा त्याग करना ।

गुरु नानक ने मानव-एकता और मानव-प्रेम का ऊँचा आदर्श लोगों के सामने रखा । सबका भगवान् एक है और सब मानव बराबर हैं । उन्होंने कुरान और पुरान की शिक्षा को एक सिद्ध करते हुए कहा था कि दोनों मानव-प्रेम सिखाते हैं । गुरु नानक को मुसलमान 'मस्त कलन्दर' और हिन्दू 'बाबा' के नाम से पुकारते थे । वह सूफ़ी सन्तों जैसी पोशाक पहनते थे । और हिन्दू साधुओं की तरह तिलक लगाते थे, माला कंठी पहनते थे । उनकी वाणी में इतना रस था कि हिन्दू, मुसलमान दोनों उनको अपना गुरु मानते थे ।

गुरुदेव टैगोर का मानना था कि मनुष्य का सच्चा स्वरूप उसकी आत्मा है । आत्मा परमात्मा का विराट् रूप है । यह विराट् सम्पूर्णता विश्व के प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है । गुरुदेव के अपने शब्दों में—'जब मनुष्य मानवता से अलग पड़ जाता है, तब वह अपने विराट् स्वरूप से अपरिचित रहता है । जब वह सबमें अपनी आत्मा के दर्शन करता है, तब उसकी आत्मा का परमात्मा में विलीनीकरण हो जाता है अर्थात् वह मुक्त हो जाता है । तभी वह सम्पूर्ण सत्य के साथ एकरूप हो जाता है । सब के साथ एकात्मता स्थापित करता है ।'

हाफ़िज़ शीराज़ी ने कहा था :

हाफ़िज़ा गर वसल ख़ाही सुलहकुन-बा ख़ासो आम
बा मुसलमां अल्हा-अल्हा बा बरहमन राम राम ।

अर्थात् प्रभु-दर्शन के लिए सबसे मैत्री ज़रूरी है । सम्राट् अकबर के दीने-इलाही के "सुलह-कुल" शब्द का भी यही अर्थ है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांधीजी देश और विश्व, ग्राम और नगर, नज़दीक और दूर को प्रेम की माला में पिरोना चाहते थे। मानव-समाज में समन्वय लाना चाहते थे।

'तत्तु समन्वयात्"

अर्थ : ज्ञान तो समन्वय से प्राप्त होगा।

भारत में आज समन्वय की अत्यन्त आवश्यकता है। समन्वय के अभाव में हमारा कोई काम आगे नहीं बढ़ रहा है। अभिमान ने हमें अन्धा कर दिया है; एक दूसरे का शत्रु बना दिया है। यदि हम सब अपना अभिमान छोड़ दें, सबकी सेवा करें और सारे भारतवासियों को एक मानें अर्थात् समन्वय करें, तो भारतीय दर्शन का प्रभाव दूर-दूर तक फैलेगा। जाति-अभिमान, धर्म-अभिमान, भाषा-अभिमान आदि नाना प्रकार के अभिमानों के कारण पूरे भारतवर्ष में तनातनी और संघर्ष दिखाई देता है। चारों ओर हिंसा और मारकाट का प्रदर्शन होता है। व्यक्ति अभिमान को दूर कर अपने आपको समाज का अंग माने और समाज व्यक्ति का आदर करे; और इस प्रकार व्यक्ति और समाज का समन्वय होगा तो सामाजिक जीवन में निखार आयेगा। विनोबा का कहना है, 'तत्वज्ञानके समन्वय के बिना मनुष्य एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता। देह और आत्मा के समन्वय के बिना भी समाज की गाड़ी रुक जाती है। तीनों के योग से जीवन में समाधान हो सकता है।" समन्वय की दृष्टि के लिए ब्रह्मचर्य, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, अस्वाद, वाक्-संयम और निर्भयता का होना ज़रूरी है।

भारत को इस समय आध्यात्मिक शान्ति की आवश्यकता है :

त्वदीयपुण्यं सकलस्य पुण्यं, त्वज्जीवनं सर्वजनस्य चापि
त्वदीयदैवं सकलस्य दैवं, तवानुरागः सकलानुरागः।

अर्थ : आपका पुण्य सब का पुण्य है। आपका जीवन सबका जीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। आप में जो परमात्मातत्त्व है, वही सब में है। आप का प्रेम सब के लिए होना चाहिए।

समन्वय से राष्ट्र-एकता और राष्ट्र-एकता से विश्व-एकता की ओर जाने का यह त्रि-सूत्री मार्ग है। "समन्वय ही मानव-धर्म है" ग्रन्थ की रचनाका आधार यही त्रि-सूत्री मार्ग है। भगवान् हम सब को समन्वय के ऊँचे आदर्श तक पहुँचने की शक्ति दे।

ओम्प्रकाश त्रिखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रार्थना

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

—यजुर्वेद ३६ । १८

अर्थ—सभी प्राणी-मात्र मेरी ओर मित्र-भावना से देखें, मैं सभी प्राणी-मात्र की ओर मित्र-भावना से देखूं, तथा हम सब एक दूसरे की ओर मित्र-भावना से देखें ।

सभानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानं अस्तु वो मनो यथा वः सुसंहासति ॥

—ऋग्वेद

अर्थ—हमारा ध्येय समान हो, हमारे हृदय समान हों, हमारे मन समान हों, ताकि प्रसन्नचित्त रहें ।

स्वस्ति मात्रे उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो
अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ अथर्व० १-३५-४

अर्थ—हमारे माता-पिता का, हमारी गायों का, सारे जगत् का और मनुष्यों का कल्याण हो । जगत् हमारे लिये सम्पदा से और सद्-बुद्धि से युक्त हो और हम चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करें अर्थात् स्वस्थ होकर जियें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओ३म् सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यम् करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

—कठोपनिषद्

अर्थ—हम दोनों का एक साथ पालन हो। एक साथ रक्षण हो। हम दोनों एक साथ मिलकर पुरुषार्थ करें। हमारी बुद्धि तेजस्वी हो। हम एक दूसरे का द्वेष न करें। हम सब मिलकर काम करें और उसका जो परिणाम निकले उसे सब मिलकर भोगें।

सत्यं वद। धर्मं चर ।

—तैत्तिरीयोपनिषद्

अर्थ—सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो।

धर्म का अर्थ बहुत व्यापक है, उसमें सभी दैवी गुण आ जाते हैं।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्,
न ब्रूयात् सत्यं अप्रियम् ।

—मनुस्मृति

अर्थ—सत्य बोलो, पर प्रिय बोलो। सत्य होते हुए भी सुनने वाले को अप्रिय लगे, ऐसा न बोलो।

धर्म एव हतो हंति, धर्मो रक्षति रक्षितः

—मनुस्मृति

अर्थ—हम धर्म का हनन करेंगे तो धर्म हमारा हनन करेगा; और धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी रक्षा करेगा।

नाऽसौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,
न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ।

—म हाभारत

अर्थ—जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं, और जिसमें छल है, वह सत्य नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१ ओंकार सतिनामु कर्ता पुरुखु निरभउ निर्वैर अकालमूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।। जपु

आदि सचु जुगादि सचु । है भी सचु नानक होसी भी सचु ।।

—जपुजी

अर्थ—हम अपना हर काम उस भगवान् की कृपा से शुरू करें, जो (नाना रूप होते हुए भी) एक है, जो ॐकार है, सत्य जिसका नाम हैं, जो कर्त्ता है चैतन्यरूप पुरुप है, निर्भय-निर्वैर है, कालातीत, अजन्मा, स्वयंभू है, और गुरु के रूप में भी है । वह स्थल और काल का आदि है । वह आदि में या भूतकाल में भी सत्य-स्वरूप था, वह वर्तमान में सत्य-स्वरूप है, और नानक कहते हैं, भविष्य में भी सत्य-स्वरूप रहेगा ।

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

—राजा शिवि की भगवान से प्रार्थना

अर्थ—मुझे राज्य की इच्छा नहीं, मुझे स्वर्ग की इच्छा नहीं, मुझे वार-बार जन्म न लेने की अर्थात् मुक्ति की इच्छा नहीं । मेरी केवल एक ही इच्छा है कि मैं दुःख-ताप से तप्त प्राणी-मात्र का दुःख ताप दूर करता रहूं ।

तर्के दुनिया, तर्के उक्वा,
तर्के मौला, तर्के तर्क ।

अर्थ—संसार का त्याग करो, स्वर्ग का त्याग करो, भगवान् का भी त्याग करो । त्याग की भावना का भी त्याग करो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईशावास्योपनिषद्

'ईशावास्योपनिषद्' नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का एक अनुपम ग्रन्थ है। आत्मा और परमात्मा के ज्ञान का एक पूर्ण उपनिषद् है। गांधीजी ने इसे हिन्दू धर्म-ग्रन्थों का सार कहा है। विनोबाजी ने इसे वेदों का सार और गीता का बीज माना है। जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण एक सर्वज्ञ परमात्मा है। जगत् की स्थिति, उसके नियन्त्रण तथा लय का कारण भी वही है। परमात्मा सबका आत्मा-स्वरूप है। यही इस ग्रन्थ की सिखावन है। 'ईशावास्योपनिषद्' जीवन का परम रहस्य समझाने वाला, जीवन की कल्याणकारी व्यवस्था सुझाने वाला जीवन को सरल, स्वच्छ और तेजस्वी बनाने वाला, धर्म-मार्ग पर चलाने वाला एक परिपूर्ण ग्रन्थ है। इसका उद्देश्य है मनुष्य को ज्ञान और कर्म का समन्वय सिखाना, सब के साथ समान व्यवहार की शिक्षा देना। यह ग्रन्थ आचरण और चिन्तन-पद्धति का एक सरल ग्रन्थ है।

ईशावास्य उपनिषद् में कुल १८ मन्त्र हैं और सब एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि वह भगवद्-भक्ति का एक अनुपम ग्रन्थ बन गया है।

शान्ति-मन्त्र

ॐपूर्णम् अदः पूर्णम् इदं
पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णम् आदाय
पूर्णम् एव अवशिष्यते॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—ॐ ! वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण निष्पन्न होता है। पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लें तो भी पूर्ण ही शेष रहता है ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

: १ :

ईशावास्यम् इदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

अर्थ—जगत् में जो कुछ जीवन है, वह ईश्वर का बसाया हुआ है। इसलिए उसके नाम से त्याग करके, तू यथाप्राप्त भोगता जा। किसी के भ धन के प्रति वासना न रख।

: २ :

कुर्वन् एव इह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।
एवं त्वयि न अन्यथा इतः अस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

अर्थ —इस लोक में कर्म करते-करते ही, सौ साल तक जीने की इच्छा करें। तुझ देहवान् के लिए यही मार्ग है। इससे भिन्न मार्ग नहीं है। मनुष्य से कर्म नहीं चिपकता, फल-वासना चिपकती है।

जब मनुष्य पराये धन अर्थात् परिश्रम का शोषण नहीं करता तब उसे कर्मनिष्ठा की निधि सहज ही प्राप्त हो जाती है। इस मन्त्र का यही आदेश है।

: ३ :

असुर्याः नाम ते लोकाः अन्धेन तमसा आवृताः।
तान् ते प्रेत्य अभिगच्छन्ति ये के च आत्महनः जनाः ॥

अर्थ—आत्म-ज्ञान से शत्रुता करने वाले आत्मघातकी जन देह-पात के बाद गाढ़ अन्धकार से घिरी हुई आसुरी योनि को प्राप्त करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: ४ :

अनेजदेकं मनसो जवीयो ।
नैनद् देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् ।
तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।

अर्थ—आत्म-तत्व चलन-चालन न करने वाला परन्तु मन से भी अधिक वेगवान् है । देव उसे पकड़ नहीं सकते, किन्तु उसने देवों को पकड़ रखा है ! वह स्वयं खड़ा रहकर भी दौड़ने वालों को पीछे छोड़ जाता है । प्रकृति-माता की गोद में खेलने वाला उसी की सत्ता पर हल-चल करता रहता है ।

: ५ :

तद् एजति तद् न एजति
तद् दूरे तद् उ अन्तिके ।
तद् अन्तरस्य सर्वस्य
तद् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः ।।

अर्थ—वह हलचल करता है और वह हलचल नहीं करता । वह दूर से दूर है और नज़दीक से नज़दीक है । वह इन सब के भीतर और इन सब के बाहर है ।

: ६ :

यस्तु सर्वाणि भूतानि
आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं
ततो न विजुगुप्सते ।।

अर्थ—जो निरन्तर आत्मा में ही समस्त भूत और समस्त भूतों में आत्मा को देखता है, वह किसी से ऊबता नहीं अर्थात् घृणा नहीं करता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: ७ :

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि
आत्मा एव अभूद् विजानतः ।
तत्र कः मोहः कः शोकः
एकत्वं अनुपश्यतः ॥

अर्थ—जिसकी दृष्टि से आत्मा ही सर्वभूत हो रहा हो, उस निरन्तर एकत्व देखने वाले, विज्ञानी पुरुष को, मोह कहां और शोक कहां ?

मनुष्य का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है। संकुचित आत्मीयता से मोह पैदा होता है। मोह और शोक मनुष्य के लिए विनाश का कारण बनते हैं। व्यापक आत्मीयता में यह संभव नहीं।

: ८ :

स पर्यगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्
अस्नाविरं शुद्धम् अपापविद्धम् ।
कविर् मनीषी परिभूः स्वयंभूः
याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

अर्थ—वह उस तेजस्वी, देह-रहित, अतएव व्रणादि देह-दोषों से और स्नायु आदि देह-गुणों से सर्वथा अलिप्त, शुद्ध और पापवेधमुक्त, ऐसे आत्मतत्व को चारों ओर से घेर कर बैठ गया है। वह कवि अर्थात् क्रान्तदर्शी, वशी, व्यापक और स्वतन्त्र हो गया है। उसने शाश्वतकाल तक टिकने वाले, सर्व अर्थ यथावत् साध लिये।

: ९ :

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते ।
ततः भूयः इव ते तमः ये उ विद्यायां रताः ॥

अर्थ—जो अविद्या में डूब गये वे घोर अन्धकार में डूब गये। जो विद्या में रम गये, वे मानों उससे भी घोर अन्धकार में चले गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: १० :

अन्यद् एव आहुः विद्यया अन्यद् आहुः अविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नः तद् विचचक्षिरे ॥

अर्थ—आत्मतत्त्व को विद्या से भिन्न ही कहा है और अविद्या से भी भिन्न कहा है । जिन्होंने हमको उसका दर्शन कराया है, उन धीर पुरुषों से हमने ऐसा सुना है ।

: ११ :

विद्यां च अविद्या च यः तद् वेद उभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते ॥

अर्थ—विद्या और अविद्या इन दोनों के साथ, जो उस आत्म-तत्व को जानते हैं, वे उस आत्मतत्व के सहारे, अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमृत को पाते हैं ।

: १२ :

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः ॥

अर्थ—जो निरोध में डूब गये, वे गाढ़ अन्धकार में पैठे । जो विकास में रम रहे, वे मानों उससे भी घोर अन्धकार में पैठे ।

: १३ :

अन्यद् एव आहुः संभवाद् अन्यद् आहुः असंभवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नः तद् विचचक्षिरे ॥

अर्थ—आत्म-तत्व को विकास से भिन्न ही कहा है, तथा निरोध से भी भिन्न कहा है । जिन्होंने हमको उसका दर्शन कराया है, उन धीर पुरुषों से हमने ऐसा सुना है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: १४ :

संभूतिं च विनाशं च यः तद् वेद उभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्या अमृतम् अश्नुते ।।

अर्थ—विकास और निरोध, इन दोनों के साथ, जो आत्मतत्त्व को जानते हैं, वे उस आत्मतत्त्व के सहारे, निरोध से मृत्यु को पार करके विकास से अमृत को पाते हैं।

: १५ :

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।

अर्थ—सुवर्णमय पात्र से, सत्य का मुंह ढंका हुआ है । हे विश्व-पोषक प्रभो, मुझ सत्यधर्म-उपासक के दर्शन के लिए, उसे तू खोल ।

: १६ :

पूषन् एक ऋषे यम सूर्य
प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह
तेजः यत् ते रूपं कल्याण-तमं तत् ते पश्यामि,
यः असौ असौ पुरुषः सः अहम् अस्मि ।।

अर्थ—तू इस विश्व का पोषक, और तू ही एक निरीक्षक है । तू नियमनकर्त्ता और तू उत्तम प्रवर्त्तनकर्त्ता है । तू सबका प्रजावत् पालन-कर्त्ता है । अपने ये पोषणादि रश्मि खोलकर और एकत्र करके दिखा । तेरा वह तेजस्वी और परम कल्याणमय रूप मैं अब देख रहा हूँ । वह जो परात्पर पुरुष, सो मैं हूं ।

: १७ :

वायुः अनिलम् अमृतम् अथ इदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—यह प्राण उस चैतन्यमय, अमृत-तत्त्व में लीन हो और फिर शरीर की राख हो जाय। ईश्वर का नाम लेकर, हे दृढ़ संकल्पमय जीव, स्मरण कर। उसका स्मरण किया कर। हे मेरे जीव, स्मरण कर। अपने संकल्प छोड़ कर उसका स्मरण किया कर।

: १८ :

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मद् जुहुराणं एनः
भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम॥

अर्थ—हे मार्ग-दर्शक देदीप्यमान प्रभो, विश्व में बुने हुए सब तत्त्व तू जानता है। हमें सरल मार्ग से उस परम आनन्द की ओर ले जा। टेढ़ा जाने वाला पाप तू हमसे दूर हटा। तेरी हम फिर-फिर नम्र वाणी से विनय करते हैं।

ओ३म्, पूर्णम् अदः पूर्णम् इदं पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णम् एव अवशिष्यते॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

[मन्त्रों का अर्थ आचार्य विनोबा भावे की पुस्तक ईशावास्योपनिषद्, सर्व सेवा संघ प्रकाशन से आभार सहित लिया गया है।]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीता–सारतत्त्व

स्वधर्म आचरण का महान् ग्रंथ : गीता

मन चंचल और दौड़ता रहता है। जिस जिस दिशा में वह जाय, उस उस ओर से उसे मोड़ कर आत्मा में स्थिर करना चाहिए।

आत्मा में स्थिर होने के तीन उपाय हैं—(१) कर्मयोग, (२) भक्तियोग, (३) ज्ञानयोग। कर्मयोग ज्ञान-मूलक तथा भक्ति-प्रधान होना चाहिए। ज्ञानयोग भक्ति-प्रधान और कर्म-प्रेरित होना चाहिए। भक्तियोग ज्ञान और कर्म का समन्वय-रूप होना चाहिए। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग तभी सधते हैं जब मनुष्य का अहं-भाव मिट जाता है।

गीता मनुष्य के मोह, ममत्व और आसक्ति को दूर करके उसके स्वधर्म का उसे भान कराती है।

हमारी प्रार्थना क्या हो ?

भगवान ! हम आपकी शरण में हैं, आप हमारे अनन्य गुरु हैं। हमें हमारे धर्म का सीधा और सरल मार्ग बताइये, जिस पर चलकर हम अपना तथा पूरे मानव-समाज का हित साध सकें।

गीता के अनुसार जीवन के तीन महा सिद्धांत :

(१) आत्मा अमर और अखंड है।

(२) देह का नाश निश्चित है।

(३) स्वधर्म में ही मानव-कल्याण है !

हम स्वधर्म-पालन से आगे बढ़ सकते हैं। स्वधर्म का आश्रय हमें कभी नहीं छोड़ना चाहिए। यह जीवन का बुनियादी सिद्धांत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मा अमर है, देह नाशवान है यह पूर्ण तत्वज्ञान है। यदि यह तत्वज्ञान हमारी समझ में आ जाय तो स्वधर्म हमारे लिए सुलभ हो जाय।

आत्मा स्वच्छ, नीरोगी, अविनाशी और असीम है। देह अस्वच्छ, रोगी, परिवर्तनशील और सीमित है।

देह की आसक्ति छोड़ कर देह को सेवा का साधन बनाना—यह गीता का सन्देश है।

गीता के साधक के लिए आवश्यक गुण :

(१) स्वधर्म का सहज और सरल मार्ग अपनाना।

(२) देह का उपयोग स्वधर्म-पालन के लिए करना।

(३) आत्मा अखंड तथा व्यापक है, इसका ज्ञान होना।

योग—जीवन के सिद्धांतों को आचरण में लाने की कला या युक्ति को योग कहते हैं।

सत्वगुण—फल-त्याग की भावना से कर्म करना। सकाम कर्म से निष्काम कर्म अच्छा होता है।

मोक्ष क्या है ?—निष्काम कर्म करते हुए अकर्म तक पहुंचना, सभी प्रकार की वासनाओं से छुटकारा पाना मोक्ष है। जब फल-त्याग इस लक्ष्य तक पहुंच जाता है तब जीवन-कला सधती है।

जीवन-कला के तीन उपाय :

स्वाध्याय, मनन, और आत्म-परीक्षण।

निष्काम कर्म के लक्षण :

(१) निष्काम-कर्म से मनुष्य की बुद्धि आत्म-निष्ठ होती है, उसकी बुद्धि इन्द्रियों के आधीन नहीं होतीं। वह पूर्ण संयमी होता है। वह इन्द्रियों को स्वार्थ-मार्ग से हटाकर परमार्थ के कामों में लगाता है। परमार्थी मनुष्य का कर्म आत्म-विकास का कारण बनता है। संसारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य का कर्म आत्म-बाधक बनता है। परमार्थी फल-त्यागकी भावना से कार्य करता है। संसारी मनुष्य फल-प्राप्ति के विचार से कर्म करता है। मनुष्य का कर्म जब नैतिक, आध्यात्मिक और पारमार्थिक होता है तब वह दिव्यकर्म कहलाता है। संसारी मनुष्य अपने सुख के लिए कर्म करता है। कर्मयोगी दूसरों के सुख और भले के लिए ही कर्म करता है।

निष्काम कर्म से व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण होता है। जिस समाज में निष्काम कर्मयोगी पैदा होते हैं, उसमें सुव्यवस्था समृद्धि और सौमनस्य रहते हैं। निष्काम कर्म उपासनामय, सेवामय होना चाहिए। कर्मयोगी का कर्म सहज धर्म हो जाता है। कर्मयोग से देह और बुद्धि तेजस्वी होती हैं। उस का चित्त शुद्ध रहता है। हमारा हर काम प्रभु-दर्शन कराने वाला होना चाहिए।

सत्य और अहिंसा के आचरण के लिए मानसिक संशोधन आवश्यक है। आत्म-परीक्षण के लिए चित्त-शुद्धि ज़रूरी है। निष्काम कर्म काम-क्रोध से मुक्त होने पर ही सध सकता है। चित्त-शुद्धि निष्काम कर्म-योग का उत्तम साधन है। लोकसेवा के लिए शुद्ध भावना ज़रूरी है। लोक-सेवा में यदि द्वेष मत्सर, स्वार्थ, अहंकार आदि विकार रहेंगे तो उस लोक-सेवा के भयंकर परिणाम भी हो सकते हैं। हाथ में भी सेवा हो और मन में भी सेवा हो तभी सच्ची सेवा मानी जाएगी। गीता में सेवा-कर्म के तीन प्रकार बतलाये हैं—कर्म, विकर्म, अकर्म। कर्म अर्थात् स्वधर्माचरण की नियमबद्ध स्थूल क्रिया। विकर्म अर्थात् उस कर्म के साथ मन का मेल। कर्म विकर्म मिल कर निष्काम कर्म बनता है। इस प्रकार कर्म के साथ जब विकर्म का जोड़ मिल जाता है तो उस में से जो शक्ति पैदा होती है उसका नाम अकर्म है। हमारे मन में जो अच्छाई-बुराई रहती है वह हमारे कर्म द्वारा बाहर आती है, कर्म में दोष आ जाता है; उसे दूर करने के लिए विकर्म का सहयोग चाहिए। कर्म को स्वच्छ तथा निर्मल बनाने के लिए निरन्तर सतर्क

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहने की जरूरत है। जब कर्म स्वच्छ, निर्मल और सहज हो जाता है तो वह अकर्म हो जाता है। अकर्म का बोझ मालूम नहीं होता। अकर्म आनन्द-मूलक होता है। कर्म स्वधर्माचरण की भावना से किया जाय। विकर्म की सहायता से उसे निर्विकार बनाया जाय। विकर्म से, योग से उसे स्वाभाविक बनाया जाय। अकर्म अवस्था में अहंकार मिट जाता है। काम-क्रोध का वेग नष्ट हो जाता है। दुःख ताप का भान तक नहीं रहता। कर्मयोग ज्ञान-मूलक तथा भक्ति-प्रधान होना चाहिए। अकर्म अवस्था में मनुष्य रात दिन कर्म करते हुए भी कुछ नहीं करता; कुछ न करते हुए भी अनन्त कर्म करता है।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण :

गान्धी जी गीता के उपासक थे, उन्होंने गीता के गहरे समुद्र में डुबकी लगा कर हमें स्थितप्रज्ञ का बहुमूल्य रत्न निकाल कर दिया। स्थिर-बुद्धि मनुष्य दुःख से, पीड़ा से, बन्धन से, हिंसा से और अपमान आदि मानसिक वेदनाओं से व्याकुल होकर पथभ्रष्ट नहीं होता। यही कारण है कि गान्धी जी अपने लक्ष्य पर, धर्म पर, कर्त्तव्य कर्म पर, व्रतनियम पर, प्रण, प्रतिज्ञा पर, समाज-सेवा पर स्थिर रहे, जिससे उनका जीवन सारी मनुष्य-जाति के लिए रोशनी का मीनार बन गया।

गीता व्यवहार-शुद्धि सिखाती है। गीता का परमार्थ हमें सिखाता है कि अपना व्यवहार शुद्ध और निर्मल रखकर मानसिक समाधान और शान्ति कैसे प्राप्त की जाय। हम मनुष्य हैं, देव हो सकते हैं। हम आत्मा हैं, परमात्मा हो सकते हैं। आत्म-तत्व में ही परमात्म-तत्व निहित है।

ध्यानयोग के लिए चित्त की एकाग्रता, जीवन की परिमितता, सम-दृष्टि जरूरी है। चित्त की एकाग्रता का अर्थ है उस की चंचलताओं पर अंकुश। जीवन की परिमितता का अर्थ है सब काम सोच-समझकर, माप-तौलकर हों। सम-दृष्टि का अर्थ है विश्व की ओर देखने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की उदार दृष्टि । चित्त की एकाग्रता के लिए चित्त की शुद्धि ज़रूरी है। जितना जीवन-व्यवहार शुद्ध होगा उतना पारमार्थिक व्यवहार अहंकार-रहित होगा। दूसरों के गुण और अपने दोष देखने की आदत हम डालें, तो हमारा जीवन-व्यवहार निरन्तर शुद्ध होता जाएगा।

यह जगत् आत्मा और अष्टधा प्रकृति से बना हुआ है। चैतन्य आत्मा और जड़ प्रकृति का ही सर्वत्र मेल दिखाई देता है। आत्मा और जड़ प्रकृति का दो प्रकार का आनन्द है। आत्मा का आनन्द असली आनन्द है और जड़ प्रकृति का आनन्द नकली आनन्द है। आत्मा का आनन्द भक्ति-रस माना गया है। इस आनन्द के सामने दूसरे सब आनन्द फीके पड़ जाते हैं।

भक्ति के तीन प्रकार हैं—सकाम, निष्काम, संपूर्ण। निष्काम भक्ति, के भी तीन प्रकार हैं—आर्त अर्थात् प्रेम की दृष्टि-युक्त भक्ति, जिज्ञासु अर्थात् ज्ञान की दृष्टि-युक्त भक्ति, अर्थार्थी अर्थात् सब के कल्याण की दृष्टि-युक्त भक्ति। एक भक्त कर्म के द्वारा, दूसरा बुद्धि के द्वारा, तीसरा हृदय के द्वारा प्रभु के पास पहुंचता है।

मौत हमेशा सामने रहे तो मनुष्य पाप से मुक्त हो सकता है। मरते समय जिस मनुष्य के अच्छे संस्कार रहते हैं, उसका जीवन अच्छा माना जाता है। अन्तरात्मा में प्रभु-स्मरण और बाहर से स्वधर्माचरण, हाथों से सेवा-कर्म, मन में विकर्म—ऐसा अभ्यास नित्य चलना चाहिए।

अग्नि-कर्म अर्थात् यज्ञ। अन्त समय तक यज्ञ-कर्म होता रहे। सतत कर्त्तव्य करते हुए जिसे मौत आ जाय उसका जीवन धन्य है। मृत्यु के समय मन पवित्र रहे, हृदय में आसक्ति बिल्कुल न रहे।

राज मार्ग—नित्य का सेवाकर्म ही यज्ञकर्म है। यही राज मार्ग है। हम अपनी सेवा का सम्बन्ध भगवान से जोड़ दें। अपनी प्रत्येक कृति का सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ दें। हम मानव रूप में प्रकट भगवान् की पूजा करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने कर्म को प्रभु को अर्पण करना, शुद्ध भाव से सेवामय जीवन व्यतीत करना, यह मोक्ष मार्ग है। कर्म ऐसी खूबी से किया जाय कि फल की वासना न हो, यह कर्म-मार्ग है। अपने प्रत्येक कार्य को भाव-पूर्वक प्रभु से जोड़ देना, यह भक्ति-मार्ग है। कर्म-मार्ग और भक्ति-मार्ग का तालमेल बिठाना, यह राजयोग है।

नामु खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात :

जहां नाम है वहां पाप नहीं। नाम का जाप करो। प्रभु से जी लगाओ। प्रभु की कृपा के पात्र बनो। सब कर्म उसे अर्पण कर दो, जीवन पवित्र हो जाएगा, मलीनता दूर हो जाएगी।

यह सारा जगत् परमात्मा का बसाया हुआ है। सर्वत्र परमात्मा ही व्याप्त है। सब की एक सी चिन्ता करने वाला, कृपालु, ज्ञान का भण्डार, वत्सल, समर्थ, पावन, सुन्दर, परमात्मा चारों ओर सर्वत्र मौजूद है।

जीवन रहस्य :

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

"जगत् में जो कुछ जीवन है, वह ईश्वर का बसाया हुआ है। इस लिए उसके नाम से त्याग करके, तू यथा-प्राप्त भोगता जा, किसी के भी धन के प्रति वासना न रख।"

ईशावास्योपनिषद् का यह मन्त्र एक महान् जीवन-व्यापी सिद्धांत पेश करता है।

आत्म-ज्ञान के लिए सृष्टि और काल का ज्ञान जरूरी है। दोनों अनादि और अनन्त हैं। असीम हैं। जब हम सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में प्रभु के दर्शन करेंगे तब हमें सच्चा आनन्द मिलेगा। जब हमारी भोग-वासना नहीं रहेगी तब प्रत्येक वस्तु में प्रभु दर्शन की कला हाथ आएगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम का पवित्र दर्शन तभी होगा। काल-इतिहास मे जितनी अच्छाई हो, ले लेना, बुराई छोड़ देना।

प्रभु-दर्शन का अधिकारी कौन ?

जो अनासक्त रहता है, द्वेष नहीं करता, वह अहंभाव का त्याग करके अपने सभी कर्म प्रभु को समर्पण कर देता है, प्राणी-मात्र से प्यार करता है, जिस का संसार में किसी से वैर नहीं, जो तटस्थ रह कर संसार की निःस्वार्थ तथा निरपेक्ष सेवा करता है। जो भक्तिभाव में मस्त रहता है, जो श्रमनिष्ठ है, वह प्रभु-दर्शन का अधिकारी बनता है।

विश्वरूप-दर्शन

छोटे से छोटे परमाणु में भी सारा विश्व समाया हुआ है। इसी का नाम विराट दर्शन है।

रात-दिन कर्म करके भी लेश मात्र कर्म न करनेवाला सगुण भक्त कहलाता है। भीतर से सब के हित का चिन्तन करनेवाला निर्गुण भक्त कहलाता है। बाहर से भिन्न दिखाई देनेवाले ये दोनों भक्त एक-से ही हैं। दोनों प्रभु के भक्त हैं। आँखों से हरि का दर्शन करें, कानों से हरि-कथा सुनें, जीभ से हरि का नाम लें, पाँव से तीर्थ-यात्रा करें और हाथों से सेवा-कार्य करें।

निर्गुण भक्त इन्द्रियों को विघ्न रूप मानता है। वह उन्हें संयम में रखता है। सगुण भक्त इन्द्रियों के सभी कार्यों को प्रभु-अर्पण कर देता है। ये दोनों इन्द्रिय-दमन के ही प्रकार हैं। सगुण और निर्गुण एक दूसरे के पूरक हैं।

ज्ञानी पुरुष के लक्षण

ज्ञानी पुरुष कर्मयोगी होता है। कर्मयोगी अर्थात् स्वधर्माचरण करनेवाला। स्वधर्माचरण में फलत्याग ज़रूरी होता है। कर्म करें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उसके फल की आसक्ति छोड़ दें। देह और आत्मा के सम्बन्ध को समझें। फल कर्म का शरीर है और कर्म द्वारा जो चित्तशुद्धि होती है वह उसकी आत्मा है। प्रत्येक कर्म में उसकी देह को अलग करके आत्मा की पूजा करें। ज्ञान की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं :—

(१) क्रियावस्था अर्थात् अत्यन्त निर्मल और आदर्श क्रिया।

(२) भावावस्था यानी त्रिभुवन के पाप पुण्य को मैं करता हूँ, ऐसा मानना; परन्तु उनका लेशमात्र स्पर्श न होने देना।

(३) ज्ञानावस्था अर्थात् लेशमात्र भी कर्म अपने पास न रहने देना। सब कर्म भस्मसात् कर देना।

मनुष्य की बड़ाई इसी में है कि वह संयम से जीवन व्यतीत करे, प्राणीमात्र की रक्षा करे, सब के भले की बात सोचे।

देह साध्य नहीं, साधन है। साधन-शुद्धि रहेगी तो साध्य-शुद्धि अपने आप आयेगी।

मन को सजाना, बुद्धि को विकसित करना, हृदय को पवित्र बनाना यह मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

"तत्त्वमसि"-वह आत्म-रूप तू ही है। देह और आत्मा अलग हैं। आत्म-तत्त्व को सुरक्षित रखने के लिए देह का बलिदान भी करना पड़े तो किया जाय।

नैतिक आधार मज़बूत होना चाहिए। सत्य-असत्य का विवेक करके सत्य को ग्रहण करना चाहिए।

हम आत्म-अनात्मा का विवेक कर के अपने जीवन को प्रभुमय बनाते चले जायें।

त्रिगुणातीत के लक्षण

सत्व, रज, तम—ये प्रकृति के तीन गुण हैं। जब इन तीनों से आत्मा को अलग करेंगे तभी देह से आत्मा को अलग किया जा सकेगा। यही आत्म-निग्रह है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तमोगुण—आलस्य, नींद, प्रमाद को जीत लिया तो तमोगुण को जीत लिया। आलस्य को शरीर-श्रम से जीत सकते हैं। नींद गहरी और गाढ़ी होनी चाहिए। इस का उपाय भी शरीर से हमेशा काम लेते रहना है। प्रमाद, विस्मरण मृत्यु ही है। श्रम-निष्ठ बनें, क्षण-क्षण का हिसाब रखें, तो आलस्य, नींद, प्रमाद नज़दीक नहीं आयेंगे।

रजोगुण—यह भी तमोगुण का ही रूप है। रजोगुण और तमोगुण दोनों मिल कर मनुष्य का नाश करते हैं। रजोगुण से लोभात्मक कर्मासक्ति पैदा होती है। रजोगुण वासनागृह है। नाना प्रकार की वासनाएँ मन में रहती हैं। रजोगुण में चित्त की स्थिरता नहीं रहती। गीता का कर्मयोग रजोगुण का रामबाण है। कर्म स्वाभाविक हो, सहज हो, सत्य-आधारित हो।

सत्त्वगुण—रजोगुण और तमोगुण के चले जाने पर शुद्ध सत्त्वगुण रह जाता है। सत्त्वगुण का अभिमान न हो, नहीं तो आत्मा शुद्ध स्वरूप से नीचे आयेगी। अभिमान और आसक्ति सत्त्वगुण के शत्रु हैं। सत्त्वगुण में अभिमान और आसक्ति को जीतने के लिए उसे प्रभु-अर्पण करना होगा। आत्मज्ञान गुणातीत बनने की कुंजी है। आत्म-ज्ञान सच्चे हृदय से, हार्दिक व्याकुलता से और प्रभु-भक्ति से प्राप्त होगा।

भक्ति-मार्ग से साधना में सहजरूपता आती है। आत्मज्ञान से मनुष्य गुणातीत होता है।

सेवक भक्त, सेव्य परमात्मा, और सेवा साधन, ये तीनों मिल कर प्रभु-दर्शन का कारण बनते हैं। सेव्य परमात्मा की सेवा के लिए हमेशा तैयार अक्षर पुरुष। अक्षर पुरुष अर्थात् कभी न थकने वाला, सृष्टि के आरंभ से ले कर सेवा करने वाला सनातन सेवक।

सृष्टि का रूप सतत बदलता रहना चाहिए। सेवा के साधनों में नवीनता रहेगी, तो सेवा में सतत मन लगा रहेगा। सेवा अहंकार-रहित होगी तो सच्ची भक्ति होगी। हमारे सभी कर्म इस प्रकार पूजा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्म हो जाने चाहिए। हमारा सारा जीवन प्रभुमय अर्थात् प्रभु की पूजा के लिए होना चाहिए।

जब हम सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में प्रभु के दर्शन करना सीख जायेंगे तो हमारा कर्म ज्ञानमय वन जायेगा।

अपने जीवन के समस्त कर्मों में ज्ञान, कर्म और भक्ति को जोड़ दीजिए। यही पुरुषोत्तम योग है। यही वेदों का सार है। गीता की शिक्षा का यही निचोड़ है।

दैवी और आसुरी वृत्ति

जीवन का प्रत्येक कर्म सेवामय, प्रेममय और ज्ञानमय होना चाहिए। हमारे जीवन में क्या-क्या अच्छे अनुभव आये, कितनी सद्-वृत्तियाँ गहरी पैठीं, कितने सद्गुण प्रविष्ट हुए, जीवन सचमुच कितना सेवामय वना—जीवन की इस कला को दैवी-संपत्ति के नाम से पुकारा जाता है। इसके विरुद्ध जो वृत्तियां हैं वे आसुरी कहलाती हैं।

अहिंसा और सत्य में ही सारे सद्गुण समाये हुए हैं। मनुष्य को सद्गुणों का अंहकार न हो इस लिए नम्रता को सद्गुणों के साथ जोड़ दिया गया है। सत्य और अहिंसा का विकास निर्भयता और नम्रता के द्वारा होता है।

सत्ता, संस्था और सम्पत्ति आसुरी शक्ति के ये तीन आधार हैं।

दैवी वृत्ति में धर्म तथा संस्कृति का आचरण पहले मनुष्य के अपने जीवन में आता है। आसुरी वृत्ति में जीवन का आचरण इस के विरुद्ध रहता है। आसुरी सम्पत्ति का एक अर्थ है—'काम, क्रोध, लोभ'। ये तीनों सारे संसार को नचा रहे हैं। ये ही नरक के तीन बड़े द्वार हैं।

आसुरी वृत्ति को हटाना और उस के स्थान पर दैवी वृत्ति को लाना, यह गीता का सारतत्त्व है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन-योजना का आधार क्या हो ?

हमारा दैनिक कार्यक्रम सुनिश्चित और व्यवहार-कुशल रहेगा तो हमारी वृत्ति मुक्त और प्रसन्न रहेगी। जीवन बोझ-रूप नहीं अपितु आनन्दमय हो जायगा। यज्ञ, दान और तप हमारे जीवन का आधार बनें। यज्ञ अर्थात् सृष्टि की छीजन की पूर्ति करना, यह है यज्ञ का एक अर्थ। उपयोग में लायी जानेवाली वस्तुओं को शुद्ध और पवित्र रखना, यह है दूसरा अर्थ। कुछ नवनिर्माण करना, यह है तीसरा अर्थ।

दान अर्थात् समाज की हमारे प्रति सेवाओं के कर्ज़ को चुकाना; समाज-सेवा के दूसरे कार्यक्रम उठाना। सेवा का ही दूसरा नाम दान है।

तप अर्थात् शरीर के विकारों को सयंम आदि उपायों से दूर करना।

यज्ञ, दान, तप ये तीनों सृष्टि, समाज और शरीर के कार्यक्रम हैं। हमें सृष्टि, समाज और शरीर को अपनी पूरी शक्ति लगा कर सुन्दर बनाना है।

बाहर से यज्ञ, दान, तप, अन्दर से आध्यात्मिक साधना। हमारे हर काम में समाज-सेवा, साधना और ईश्वरार्पणता होनी चाहिए। यज्ञ में सकामता रहेगी तो वह राजस हो जायगा। निष्फलता रहेगी तो वह तामस हो जायगा। यज्ञ को सात्विक बनाने के लिए ये दोनों नहीं रहें। ईश्वरार्पणता से स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ सब एकरूप हो जाते हैं।

फल-त्याग की विचार-धारा

सातत्य, अलिप्तता और सात्विकता मानवीय साधना के अनिवार्य अंग हैं। फल-त्याग पूर्वक कर्म करना ही सेवक का परम कर्तव्य है। फल-त्याग के सामने काम्य और निषिद्ध कर्म खड़े हो ही नहीं सकते। हिंसात्मक कर्म, असत्य कर्म आदि त्याग-पूर्वक किये ही नहीं जा सकते। सात्विक कर्म भी अनासक्ति-पूर्वक अहंकार रहित होने चाहिएं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रिया तीव्र से सौम्य, सौम्य से सूक्ष्म और सूक्ष्म से शून्य हो जाय इसी का नाम संन्यास है। इस अवस्था में अनन्त कर्म स्वतः होते रहेंगे। शून्य अवस्था तक पहुंचने के कुछ उपाय :—

(१) राजस और तामस कर्मों का सम्पूर्ण त्याग।

(२) त्याग का भी फल-त्याग। उसका अहंकार न हो।

(३) सात्विक कर्मों का स्वरूपतः त्याग न करते हुए केवल फल-त्याग।

(४) फल-त्याग करते हुए भी सात्विक कर्म सदोष हों तो भी करना।

(५) सतत फल-त्याग पूर्वक सात्विक कर्मों को करते रहने से चित्त शुद्ध होता जायेगा और तीव्र से सौम्य, सौम्य से सूक्ष्म और सूक्ष्म से शून्य—इस प्रकार क्रिया मात्र का लोप हो जायेगा।

(६) क्रिया लुप्त हो जायेगी, लेकिन कर्म—लोकसंग्रह रूपी कर्म—होते ही रहेंगे!

(७) सात्विक कर्म भी स्वाभाविक रूप से प्राप्त हों, वे ही किये जायें। जो सहज प्राप्त न हों वे कितने ही अच्छे क्यों न हों तो भी उन का मोह न रखा जाय।

(८) सहज प्राप्त स्वधर्म भी दो प्रकार का होता है — बदलनेवाला और न बदलनेवाला। बदलनेवाला स्वधर्म बदलते रहना चाहिए। इससे प्रकृति विशुद्ध होती है।

गीता दार्शनिक और व्यावहारिक ग्रंथ है। गीता का विचार समन्वयात्मक है। गीता का विचार सब को मिलानेवाला है। मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देनेवाला है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीता का नैतिक आचरण

ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, अनासक्तियोग और साम्य-योग का सुन्दर समन्वय गीता में मिलता है। ज्ञानयोग अर्थात् कृति द्वारा—केवल शब्द से नहीं—समझने की कला। भक्तियोग अर्थात् हृदय-तत्व-चिन्तन, गुण-विकासयोग। कर्मयोग अर्थात् ज्ञान और प्रेम से मिला हुआ कार्य। अनासक्ति योग यानी त्याग और तप का जीवन। तप शरीर की शुद्धि के लिए होना चाहिए, शरीर को पीड़ा देने के लिए नहीं। चित्त की शुद्धि चिन्तन, अध्ययन, ध्यान, नाम-स्मरण आदि से होती है। साम्ययोग यानी समान-चित्त होना। जब मनुष्य त्याग और तप से चित्त की शुद्धि कर लेता है तो उसका चित्त समान-चित्त हो जाता है। यह आत्मज्ञान की अवस्था है। आत्मज्ञान के साथ विज्ञान का मेल होना चाहिए। आत्मज्ञान + विज्ञान = साम्य-योग। समय के अनुसार शंकराचार्य ने ज्ञानयोग पर, मध्वाचार्य ने भक्तियोग पर, लोकमान्य तिलक ने कर्मयोग पर, गांधीजी ने अनासक्ति-योग पर बल दिया और अब आचार्य विनोबा भावे साम्य-योग पर बल दे रहे हैं। सम्ययोग आज के समय की माँग है।

कृष्ण ने ज्ञानयोग, भक्तियोग, अनासक्ति योग और साम्ययोग का सहारा लेकर अर्जुन का मोह दूर करके उसे वीरता-पूर्वक, कर्त्तव्य-भावना से कार्य करने के लिए तैयार किया। इसलिए गीता को नैतिक आचरण की विचारधारा का ग्रंथ कहा जाता है

गीता का आधार कोई नयी समाज-व्यवस्था नहीं है। गीता हमें कर्त्तव्य-भावना सिखाती है। गीता का निष्काम कर्म हमें मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य—मोक्ष—की ओर आगे बढ़ाता है,मोक्ष अर्थात् आत्मज्ञान। अपने आप को पहचानना ही आत्म-ज्ञान है। गीता का आदर्शपुरुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थित-प्रज्ञ, गुणातीत या योगारूढ़ पुरुष होगा। गीता हमें मोह-त्याग, स्थिर भावना और समत्व सिखाती है। कर्मफल-आसक्ति के कारण मनुष्य अच्छे और बुरे कर्मों के बन्धन में फंसता है। मोक्ष के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने स्वभाव और स्वधर्म के अनुसार कर्म करे। कर्म केवल मोह-त्याग की भावना से ही किया जाय। मोह-त्याग के साथ अहंभाव से ऊपर उठकर कर्म करना और कर्मफल से मुक्त होना आवश्यक है। मोक्ष के लिए यह भी आवश्यक है कि मनुष्य अपने सभी कर्म और फल प्रभु-प्रेम और भक्ति सहित भगवान को अर्पण कर दे। तब मनुष्य कर्म करता हुआ भी कर्म-बन्धन से मुक्त रहता है। निष्काम कर्म के इस सिद्धांत को सभी ने स्वीकार किया है।

सार यह है कि गीता मनुष्य के आत्म-ज्ञान को बढ़ा कर उसे नैतिक आचरण के लिए तैयार करती है। अब प्रश्न उठता है कि नैतिक समस्याओं का हल किस प्रकार किया जाये और नैतिक वातावरण में हमारा आचरण क्या हो? उसका बहुत सुन्दर उत्तर गीता ने दिया है: अच्छा कर्म हमें अच्छे लक्ष्य की ओर ले जाने वाला हो।

नैतिक आचरण के विशेष कार्य

(१) नैतिक आदर्श या कर्म से कम पाप-वृत्ति का आचरण।

(२) ज्ञान-पूर्वक चुने हुए मार्ग पर, अंदर और बाहर की रुकावटों का मुकाबला करते हुए चलना। दूसरे कार्य के लिए पूर्ण निष्ठा का होना जरूरी है। यह नैतिक शिक्षा का कार्य है। यह एक आवश्यक विषय है। परन्तु इस से पूर्व ज्ञानपूर्वक चुने हुए मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा लेने का एक विशेष महत्व है। धार्मिक और नैतिक शिक्षक सत्कार्यों पर अधिक बल देते हैं। परन्तु सत्य क्या है और असत्य क्या है? इसका विवेक अत्यन्त आवश्यक है।

हम नैतिक मूल्यों का आपसी संघर्ष प्रतिदिन देखते हैं। एक मूल्य को सामने रख कर अनेक मूल्यों पर आचरण करने लगते हैं। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार जब एक वास्तविक ग्राचरण होता है तो दूसरों की ग्रपने ग्राप उपेक्षा होने लगती है। यहां धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों के साथ वज्ञानिक मूल्यों को जोड़ देने की बात ग्राती है। ग्रात्मज्ञान ग्रोर विज्ञान के मेल से जीवन की विकट समस्या का ग्रच्छा हल निकल ग्राता है। इतना होते हुए भी हम देखेंगे कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति ग्रौर संस्थाएँ एक ही सत्य के बारे में मतभेद रखती हैं। नैतिक तथ्यों पर व्यक्तियों ग्रौर संस्थाग्रों का ग्रापसी संघर्ष यहीं से ग्रारंभ होता है। ऐसे संघर्ष से बचने का एक मात्र उपाय ग्रहिंसा है। गांधी जी का कहना था कि "ग्रहिंसा कभी ग्रपने निशाने से नहीं चूकती।" ग्रहिंसा ग्रर्थात् ग्रपनी बात को काटनेवाले ग्रौर ग्रपने से विरोध करनेवाले के प्रति सोलह ग्राने प्रेम की भावना रखना, विरोध के कारणों को ग्रापस की बातचीत, समझौते, सालिसनामे द्वारा दूर करना। नैतिक ग्राचरण से ही धर्म का निर्माण होता है। समाज के किसी ग्रंग को धर्म से ग्रलग नहीं किया जा सकता। धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है।

गीता में ज्ञान ग्रौर भक्ति को कर्म की नीवं पर खड़ा किया गया है। ग्रौर कर्म को भी विकर्म ग्रौर ग्रकर्म तक ले जाकर यानी विशुद्ध ज्ञान में कर्म का पोषण भक्ति द्वारा किया गया है।

गीता के ग्रनेक संस्करण हैं। विनोबा के 'गीता प्रवचन' को बहुत पसंद किया गया है। भारत तथा विश्व की सभी प्रमुख भाषाग्रों में उस के ग्रनुवाद हुए हैं। 'गीता प्रवचन' केवल दार्शनिक परिभाषा का ही ग्रंथ नहीं, बल्कि उच्चतम ग्राध्यात्मिक जीवन का पथप्रदर्शक ग्रंथ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्लेटो के स्वप्न का आदर्श राज्य

प्लेटो राजनीति में प्रवेश करना चाहते थे, परन्तु उस ज़माने के तथाकथित लोकतन्त्र के राजनैतिक नेताओं की तरफ से सुक़रात को जीवन-दण्ड दिये जाने पर उनका विचार बदल गया कि कोई भी ईमानदार व्यक्ति सरगर्म राजनीति में नहीं रह सकता।

सत्ताधारी अपने निजी स्वार्थों और हितों के कारण न्याय और अन्याय में विवेक नहीं करते थे। वे लोकतान्त्रिक शासन-पद्धति से अनभिज्ञ थे।

प्लेटो को सत्यशोधन की जो प्रेरणा अपने गुरु सुक़रात से मिली, उसके आधार पर उसने आदर्श राज्यनिर्माण के विषय पर 'जन-तन्त्र' की रचना की। प्लेटो ने अपनी इस रचना में आदर्श-राज्य का एक चित्र खींचा है। उनका विश्वास था कि लोकतन्त्र तभी अच्छा होगा, जब लोग अच्छे होंगे। जैसी जनता, वैसा राज्य। राष्ट्र ऊँचा नहीं हो सकता, जब तक उसके नागरिक ऊँचे नहीं होंगे। राज्य का चरित्र लोगों के चारित्र्य से बनता है। यदि जन-साधारण से अच्छा और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार नहीं होगा, यदि उसे समझने की कोशिश नहीं की जायेगी तो न स्वतन्त्रता टिक सकेगी न सत्ता। जब सुक़रात को मृत्यु-दण्ड दिया गया, तब लोकतन्त्र की विचार-धारा को बड़ा आघात पहुंचा। प्लेटो मनुष्य के हृदय की गहराई में छिपी हुई भलाई के विचार को आम लोगों की भलाई के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे।

सुक़रात की मृत्यु के पश्चात् प्लेटो सुक़रात की विचारधारा को साकार रूप देने की खोज में निकले। वह मिश्र तथा इटली गये, परन्तु वहां उनको अनुकूल वातावरण न मिला। सिसली के राजा ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थोड़ी अनुकूलता दिखायी। प्लेटो आदर्श राज्य का वहाँ एक चित्र पेश करना चाहते थे, ऐसा राज्य जहाँ सच्चे लोक-कल्याण की भावना सत्ताधारियों के व्यक्तिगत स्वार्थ और अभिमान की अपेक्षा कहीं अधिक हो, जहाँ लोग सत्ताधारियों के व्यक्तिगत स्वार्थ और अभिमान के कारण गुलामों जैसा जीवन व्यतीत न करते हों। प्लेटो की शर्त यह थी कि राजा राज्य-अधिकार छोड़ दे या वह एक विचारक के नाते त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करे। राजा को यह स्वीकार न था। प्लेटो निराश नहीं हुए और अपना प्रयत्न जारी रखा। जब वह दूसरी बार सिसली आये तो राजा के लड़के ने, जो उस समय सत्ताधारी था, उन्हें गुलाम बनाकर बेच दिया। आखिर प्लेटो के एक मित्र की सिफारिश पर राजा ने उन्हें मुक्त कर दिया और वह घर लौट गये।

यात्रा से लौटने पर प्लैटो ने एथेन्स में एक संस्था की स्थापना की, जहाँ उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। यहाँ विद्यार्थियों को गणित, क़ानून तथा संस्कृति की शिक्षा दी जाती थी। प्लैटो का मत था कि विश्व में जो कुछ है, वह सब किसी छिपी शक्ति —ईश्वर—के कारण है। मनुष्य ने अपनी नासमझी के कारण इस विधान की अवहेलना की। प्रकृति के विधान के विरोध से ही मनुष्य दुःख उठाता है। इसी कारण से मनुष्य अपने जीवन को आदर्श जीवन बनाने में असमर्थ हो जाता है। आदर्श मानव-जीवन के अभाव में आदर्श राज्य भी संभव नहीं होता।

प्लेटो के "जन-तन्त्र" में हम राजनैतिक भावना के पीछे नैतिक अत्यन्त पावन तथा परम ग्राह्य विचार देखते हैं। 'जन-तन्त्र' पुस्तक के सामने विश्व के पुस्तकालय बेकार हैं। जन-तन्त्र में नैतिकता, धार्मिक आचरण, मानव-शास्त्र, शिक्षा-विज्ञान, राजनीतिक तथा कला-विज्ञान आदि सभी विषयों की वैज्ञानिक चर्चा की गयी है। इसकी हर बात आधुनिक तथा समकालीन मालूम होती है। इसमें साम्यवाद, समाजवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अच्छा विवरण है।

जन-तन्त्र में अनुशासन और मानव-विकास की सभी बातों की वैचारिक पृष्ठभूमि मिलती है। जन-तन्त्र में न केवल व्यक्तिगत नैतिकता, अपितु सामाजिक और राजनैतिक निर्माण की समस्याओं की चर्चा भी की गयी है। न्याय के बिना आदर्श राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। न्याय की खोज का अर्थ है—नैतिकता की, व्यापक धर्म की खोज। जो लोग अपने आचरण में, एक दूसरे के सुख-दु:ख में, श्रम तथा पूँजी के व्यवहार में व्यापक धर्म नैतिकता से काम लेते हैं, वे आदर्श राज्य के आदर्शों का पालन करते हैं। लोग अपने जीवन की आवश्यक वस्तुओं का ही उपयोग करते हैं। सत्ताधारी ज्ञानपूर्वक जनसेवा का काम करते हैं। रक्षक निर्भय होकर देश की रक्षा करते हैं। जनता संयमी और सेवाभावी बनती है। प्रत्येक व्यक्ति सबके हित में अपना हित मानता है। नागरिक मानसिक स्वतन्त्रता, हार्दिक शान्ति का अनुभव करते हैं। विलासिता का जीवन व्यतीत नहीं करते। प्लेटो का कहना है कि न्यायपूर्ण राज्य में प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक वर्ग अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, दूसरों के कर्त्तव्य-पालन पर जोर नहीं देता। प्लेटो का यह भी कहना है कि जीवन की अन्तिम घड़ी में वही शान्त चित्त रहता है जिसका दूसरों के प्रति न्यायपूर्ण जीवन-व्यवहार रहा हो और जिसने कभी किसी को धोखा न दिया हो।

अब प्रश्न उठता है कि न्याय क्या है ? क्या सच बोलना और उधार चुकाना न्याय है ? हमने किसी से तलवार उधार ली। अब वह पागल हो गया और तलवार वापिस माँगने आया। क्या हम उसे तलवार लौटा दें ? क्या हम ऐसे व्यक्ति को हमेशा सच्ची बात कह सकते हैं ? एक दूसरा प्रश्न है, क्या हम अपने मित्रों का भला चाहें और शत्रुओं को हानि पहुंचायें ? अब एक और प्रश्न पैदा होता है। हमारा मित्र कौन है ? जो ऊपर से मित्र मालूम होता है या दिल से मित्रता करता है ? फिर हम शत्रु को हानि पहुंचायें ? क्या वह हमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हानि नहीं पहुंचायेगा ? यदि हम बुराई का बदला बुराई में दें तो क्या उसका परिणाम बुराई नहीं होगा ? क्या यह अन्याय नहीं होगा ? क्या इसका अर्थ यह नहीं होगा कि हम न्याय के नाम पर अन्याय फैलाते हैं ?

एक पुरानी कहावत है "जिसकी लाठी उसकी भैंस।" राज्य-सत्ता हमेशा शक्तिशाली लोगों के पास ही रहा करती है जो लोग उसे अपने स्वार्थों के लिए इस्तेमाल करते हैं। अगर लोग उनकी आज्ञाओं का पालन नहीं करेंगे तो दुःख उठायेंगे, यह भय रहता है। सत्ताधारी ग़लतियाँ करते हैं, जिसके कारण कानून द्वारा उनका अपना अहित होता है। कभी-कभी दिखावे के लिए न्याय का ढ़ोंग रचा जाता है। परन्तु एक न एक दिन उनकी पोल खुल जाती है और न्याय और सत्य की जय होती है। अन्त में न्यायपूर्ण व्यक्ति ही सुख और शान्ति का अनूभव करता है, अन्यायी नहीं। न्यायपूर्ण व्यक्ति सदा न्याय और सत्य का ही व्यवहार करता है। सुख और दुःख में एक समान ही रहता है। न्यायपूर्ण समाज में दुःख-ताप नहीं रहेगा। सत्य, प्रेम, करुणा का सर्वत्र वातावरण रहेगा। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत ठीक नहीं है। समाज सामाजिक भाई-चारे से ही फलता-फूलता है। कर्त्तव्य-पालन ही अधिकार है, न्याय ही विधान है। "जन-तन्त्र" में इस प्रकार कर्म-विधान की व्याख्या की गयी है।

अन्याय की उत्पत्ति अज्ञान से होती है। हम नहीं जानते कि कुल ब्रह्माण्ड में न्याय का ही विचार चलता है। इसलिए हमें आज की उल्टी शिक्षा को सही दिशा देनी होगी। युद्ध-विचार को बढ़ावा देनेवाले सभी प्रकार के साहित्य का पढ़ना-पढ़ाना बन्द किया जाय। विद्यार्थियों के मन पर ऐसे विषैले साहित्य का बुरा प्रभाव पड़ता है। आदर्श राज्य का श्रीगणेश बच्चों की शिक्षा से होना चाहिए। प्लेटो का कहना है कि चरित्रहीनता को दूर करना शिक्षा का विषय है। प्रत्येक बालक तथा बालिका को अच्छी शिक्षा पाने का अधिकार है। शिक्षा दो प्रकार की होनी चाहिए : शारीरिक तथा मानसिक। दोनों का सन्तुलन इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार हो कि समूचा मानव-जीवन विकसित हो सके। शरीर सुखी रहेगा तो उसका आत्मा के लिए उचित उपयोग होगा। "मन चंगा तो कठौठी में गंगा।" मन शुद्ध और पवित्र रहेगा तो हमारे ऊँचे चारित्र्य के कारण आत्मोन्नति होगी। बच्चे की मानसिक अभिरुचि को ध्यान में रखकर बड़ा होने पर उचित उद्योग की शिक्षा दी जाय जिससे वह जीवन-स्वावलम्बन के ऊँचे लक्ष्य की पूर्ति कर सके। शिक्षा का उद्देश्य दर्शन, निर्भयता और संयम का गुण विकसित होना चाहिए। आत्मा के लिए दर्शन—आचरण-युक्त ज्ञान—आवश्यक है।

राज्य में तीन प्रकार के लोग होंगे—शासक, रक्षक और किसान-मजदूर। शासक की नींव व्यक्ति की भलाई में निहित है। शासक का नैतिक स्तर आम लोगों के नैतिक स्तर से ऊँचा होना चाहिए। शासक हर दूसरे व्यक्ति को भाई, बहन, बेटा, बेटी, पिता, माता के नाते देखेगा।

शासक विज्ञान तथा जीवन-कला का विशेषज्ञ हो। शासक अपने समय का विचारक और नेता हो।

निर्भीक युवक, जिन्हें मृत्यु का भय न हो, राज्य-रक्षा का काम संभालेंगे। राज्य के ये रक्षक सोने-चाँदी, भौतिक पदार्थों के प्रलोभन या पदाधिकार, मान-मर्यादा के विचार से नहीं, अपितु अन्याय के विरुद्ध न्याय शक्ति से लैस होकर देश और समाज की रक्षा करेंगे। उनके मन में न किसी के प्रति द्वेष होगा न मारकाट की भावना। वे केवल राष्ट्र-हित की भावना से ही शत्रुओं से लड़ेंगे और अपना बलिदान देकर भी उसकी रक्षा करेंगे। शेष जनता अपना-अपना काम करने में स्वतन्त्र होगी। जनता अपने जीवन-व्यवहार में पूर्ण संयम से काम लेगी। जनता पर कोई चीज़ ठोंसी नहीं जायेगी, परन्तु प्रत्येक नागरिक कर्तव्य-पालन के विशेष महत्त्व को समझ कर अपने सभी काम करता रहेगा। वह अपना कल्याण दूसरों के कल्याण में देखेगा।

इस प्रकार समाज का प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग अपनी अभिरुचि और स्वभाव के आधार पर अपना काम करेगा। कोई कीसि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम में दखल न देगा। सब एक दूसरे के पूरक और सहायक बनेंगे।

सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को समझने के लिए हमें मनुष्य के स्वभाव को समझना होगा। शरीर का अस्तित्व आत्मा के लिए होता है। इसलिए शरीर और आत्मा के आखिरी सम्बन्ध को समझना होगा। जब मनुष्य आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह प्राणी-मात्र से प्रेम करने लगता है। प्रेम में देना ही देना होता है। देने में लेना समाया ही रहता है। प्रेम से परिपूर्ण समाज ही सच्चा आध्यात्मिक लोकतन्त्र कहलाता है। लोकतन्त्र की नींव आध्यात्मिक विचार पर रहेगी तो लोक-भावना बढ़ेगी, सद् विचार बढ़ेगा, भाई-चारा बढ़ेगा, पारिवारिक भावना बढ़ेगी। इसके विपरीत यदि लोकतन्त्र को भौतिक रंग मिलेगा तो वह भ्रष्टाचार का भयानक रूप धारण कर लेगा। युद्ध और संघर्ष तक की नौबत आयेगी। लोकतन्त्र-विरोधी भावना पनपेगी। भारत में इन दिनों ऐसा ही वातावरण दिखाई देता है। लोकतन्त्र का विचार हमारे देश का पुराना विचार है। गीता और उपनिषद् में सच्चे लोकराज्य के निर्माण का विचार मिलता है। लोकहित, प्रजाहित या सामूहिक-हित क्या है? यह शिक्षा गीता और उपनिषद् की शिक्षा है।

पश्चिमी लोकतन्त्र में राजनैतिक मतभेद, जातीय मतभेद, रंगभेद, धर्मभेद, वर्गभेद पनपते हैं। वैसा लोकतन्त्र हमारे देश के लिए अनुकूल नहीं है। लोकतन्त्र के लिए भारतीय शब्द है स्वराज्य—अपना राज्य। गीता ने इसे आत्मा का संयम कहा है। यह हो जाय तो आज स्त्री-पुरुष मालिक-मजदूर, धनी-ग़रीब, ज़मींदार और बेज़मीन, एक राष्ट्र और दूसरे राष्ट्र का आपस-आपस का संघर्ष खत्म हो जाय। हम इस बात को भूल जाते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है; पूरे मानव-समाज का एक अंग है। सबके हित में उसका हित है। प्राणी-मात्र का, आत्मा के एकीकरण का विचार हमारी समझ में आ जाय तो सारे मतभेद मिट जायें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् महावीर और उनका संदेश

महापुरुषों के महान् तप से ही राष्ट्र महान् वनते हैं। भारत की यही विशेषता रही है। भारत ने ऐसे अनेक महान् व्यक्ति पैदा किये हैं जिनके कारण विश्व में उसकी महानता बनी रही है। उन अनेक महापुरुषों में से भगवान् महावीर एक हैं। महावीर का अर्थ है—बहुत बड़ा वीर।

ब्रह्मचर्य, अनेकान्तवाद और अहिंसा ने महावीर को प्रसिद्ध महावीर बनाया। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म में विचरना, संयम, शुद्धता, पवित्रता। अनेकान्तवाद अर्थात् —एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति। सत्यं असीम है, अनंत है। अहिंसा अर्थात् शांति की लाजवाब ताक़त सब के साथ प्रेम से रहना ; दूसरों के जीवन की रक्षा करना ; आत्मपरीक्षण करना ; प्राणीमात्र की एकता के लिए काम करना ; सब में अपनी आत्मा को देखना ; दूसरों के लिए सच्चा त्याग करना।

बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धर्मों में २४ बुद्ध, २४ तीर्थंकर और २४ अवतार गिनाये जाते हैं। भगवान् महावीर जैन-धर्म के अंतिम तीर्थंकर थे। भगवान् महावीर का जन्म एक सुसंस्कृत, धार्मिक, राज-परिवार में विक्रम संवत् से ५४३ वर्ष पूर्व चैत्र सुदी १३ को हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ और माता तृशला थी। जैनधर्म का वीर-संवत् उनके निर्वाण-काल से आरम्भ होता है और वह विक्रम संवत् से ४७० वर्ष पुराना है।

महावीर का जन्म नाम वर्धमान था। वह अपनी माता को दैवी शक्ति का अवतार मानते थे। दयालुता, भक्तिभाव, वैराग्य और तप सब गुण उनको अपनी माता से ही विरासत में मिले थे। वर्धमान बचपन से ही निर्भय-वृत्ति का बालक था। ८ वर्ष की आयु में एक बार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह अपने सहयोगी बालकों के साथ गाँव से बाहर जंगल में घूम रहा था। एक पेड़ के नीचे एक बहुत बड़े साँप को देखकर दूसरे साथी बालक डर के मारे भाग निकले, परन्तु वर्धमान ने उसे माला की तरह उठाकर दूर फेंक दिया।

बालक वर्धमान की बुद्धि अत्यन्त तेजस्वी थी। स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। ६ वर्ष की छोटीसी आयु में संस्कृत का पूरा व्याकरण कंठस्थ कर लिया था, १६ वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने सारे धर्म-शास्त्र पढ़ लिये।

वर्धमान ने जब युवा अवस्था में प्रवेश किया, उनके माता-पिता उनके विवाह की चिन्ता करने लगे। वर्धमान अपनी संन्यास-वृत्ति के कारण बहुत समय तक विवाह की बात को टालते रहे। उनकी माता उनके सतत इन्कार से अत्यन्त व्याकुल हो गयी थीं। अन्त में वर्धमान अपनी माता के इस दुःख से प्रभावित होकर माताजी के सन्तोष के लिए मान गये। उनका यशोदा नाम की एक राजकुमारी से शुभ विवाह हो गया। वर्धमान के विवाह के सम्बन्ध में जैन-धर्म के अनुसार दो मत हैं। एक मत नहीं मानता कि उनका विवाह हुआ। दूसरा मत है कि उनके प्रियदर्शनी नाम की एक कन्या का जन्म भी हुआ, जिसका आगे चलकर जमालि नाम के एक राजकुमार के साथ विवाह हुआ।

वर्धमान जब २८ वर्ष के हुए तो उनके माता-पिता ने जैन-धर्म की भावना के अनुसार व्रत रख देहत्याग किया। ३० वर्ष की आयु में वर्धमान ने अपनी सारी सम्पत्ति दान में दे दी और सर्वस्व त्याग कर और संन्यास की पूँजी लेकर, राजपाट छोड़कर घर से निकल पड़े।

वर्धमान बड़े पराक्रमी थे, परन्तु उन्होंने क्रोध को जीत लिया था। वह कभी क्रोध नहीं करते थे। वह शक्तिशाली थे, परन्तु उच्च कोटि के क्षमाशील भी थे। इसी कारण उनका नाम 'महावीर' पड़ा। १२ वर्ष की कठिन तपस्या ने महावीर को सत्य-शोधक, अहिंसा-व्रतधारी, क्षमाशील, दयावान् और योग्य विद्वान् बना दिया। अपरिग्रह, शान्ति,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दम और दैवी गुणों का उनके जीवन में इतना विकास हुआ कि उनका चित्त अत्यन्त शुद्ध और निर्मल हो गया। उनके दिव्य जीवन के दो महान् सिद्धांत इस प्रकार हैं—

(१) जीवन में आत्मनिर्भर होना चाहिए, अपने पुरुषार्थ और उत्साह से ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पद पाना चाहिए।

(२) मानवीय विघ्न, क्लेश तथा प्राकृतिक आपत्तियों को खुशी-खुशी सहन करना चाहिए। उनका विश्वास था कि इस प्रकार दुःख मात्र का और पापकर्म का क्षय होता है।

महावीर के साधना-काल में दुष्ट लोगों ने उनको नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाये; उन्हें पीटा गया, भूखा रखा गया, उन पर कुत्ते छोड़े गये, उनके कानों में कील ठोंकी गयी, साधना में विघ्न डाला गया। सरदी, गरमी, आँधी, तूफान, आदि प्राकृतिक प्रकोप और शेर, चीता, साँप आदि हिंसक जंगली जानवर भी उनको उनके पथ से डगमगा न सके। हिंसक प्राणी उनकी अहिंसा-वृत्ति से प्रभावित होकर शत्रुता छोड़ देते थे।

महावीर ने नीचे लिखे पाँच व्रत धारण किये :—

(१) जहाँ दूसरों को अच्छा न लगे, वहाँ न रहना।

(२) सदा कायोत्सर्ग रहना तथा शरीर को प्रकृति को सौंप कर रहना। शरीर के बनावटी उपायों का सहारा न लेना।

(३) आमतौर पर मौन व्रत का पालन करना, अत्यन्त आवश्यक हो तो बोलना।

(४) भोजन हाथ में रख कर करना।

(५) अपनी जरूरतों के लिए गृहस्थ पर आश्रित न रहना, उनकी खुशामद न करना।

महावीर के दो रूप हैं—वस्त्र-सहित और वस्त्र-रहित। जैनों में जो वस्त्र-सहित महावीर की उपासना करते हैं वह श्वेताम्बर, और जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्त्र-रहित महावीर की उपासना करते हैं वे दिगम्बर कहलाते हैं। महावीर पहले अल्प वस्त्रधारी थे। एक बार उनका वस्त्र काँटों में उलझ कर रह गया। महावीर ने सोचा भगवान् नहीं चाहते कि वह वस्त्रधारी रहें, इसलिए वह उसे छोड़ कर आगे बढ़ गये। उस दिन से अन्त समय तक भगवान् महावीर वस्त्र-रहित रहे।

भगवान् महावीर की शिक्षा—१. सु-अध्ययन, २. सुध्यान, ३. सुतप। सु-अध्ययन अर्थात् विधिपूर्वक श्रद्धा एवं विनय के साथ अध्ययन करना। स्वाध्याय पाँच प्रकार का होता है।

१—तत्वज्ञान का अध्ययन।

२—शंका होने पर किसी योग्य व्यक्ति से समाधान कर लेना।

३—प्राप्त तत्वज्ञान को दोहराते रहना।

४—तत्वज्ञान के आधारभूत धर्मकथा या धर्मोपदेश करते रहना।

५—ज्ञान और कर्म का मेल बिठाना।

स्वाध्याय से वैराग्य-भावना जागृत होती है। स्वाध्याय से ज्ञान विशुद्ध होता है। स्वाध्याय से मनुष्य चारित्र्यवान् बनता है।

सुध्यान अर्थात् निरन्तर अच्छे कामों में, विशेषकर सार्वजनिक सेवाकार्यों में मन को लगाना और बुरे कामों से मन को हटाना। सुध्यान में धर्म और सेवा का वहुत सुन्दर समन्वय होना चाहिए।

सुतप अर्थात् प्राप्त ज्ञान के अनुसार जीवन को तपाना, सार्वजनिक सेवा में अपने आपको खपाना।

आत्मा परमात्मा से भिन्न नहीं है। आत्मा देह से भिन्न है। हम सब इसे सत्य मानते हैं, परन्तु यह हमारी पकड़ में नहीं आता। भगवान् महावीर ने हमें बताया कि स्वयं सत्य-रूप हो जाने पर ही सत्य पकड़ में आ सकता है। तुम असत्य-रूप होकर उसे नहीं पा सकते। भगवान् महावीर ने सत्य का साक्षात्कार किया था। सत्य का उपदेश वही दे सकता है जिसने उसका साक्षात्कार किया हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामना दुःख का कारण है। दुःख से वही मुक्त हो सकता है जो कामना को जानता है और उसे छोड़ भी सकता है। वर से वर बढ़ता है—यह हम सब जानते हैं, परन्तु हम निरन्तर वैर बढ़ाते रहते हैं। युद्ध से अशान्ति बढ़ती है, परन्तु हम युद्ध के कारणों को हमेशा बढ़ाते ही रहते हैं। भगवान् महावीर ने कहा था कि वैर से मुक्त वही हो सकता है जो वैर के परिणामों को जानता है और उसे छोड़ना भी जानता है। जो युद्ध की भयंकरता को जानता है और जो युद्ध को टाल सकता है वही युद्ध के भंयकर परिणामों से संसार को बचा सकता है।

भगवान् महावीर आचार और नीति-धर्म के प्रवर्तक थे। उनकी दृष्टि में अहिंसा और सत्य में भेद नहीं था। उनका मानना था कि आत्मा की पूर्ण शुद्ध अवस्था का ही दूसरा नाम अहिंसा है। इस विचार से अहिंसा सत्य से भिन्न वस्तु नहीं हो सकती। जहाँ अहिंसा है वहाँ सत्य है, और जहाँ सत्य है वहाँ अहिंसा है। राग और द्वेष के कारण सत्य प्रकट नहीं होता। तटस्थ वही हो सकता है जो आसक्ति और घृणा से दूर रहता है।

भगवान् ने कहा था—"आत्मा भी सत्य है और अनात्मा भी सत्य है।" उन्होंने यह भी कहा था, "आत्मा ही सत्य है, शेष सब मिथ्या है।" पहला द्वैतवादी दृष्टिकोण है और दूसरा अद्वैतवादी। अखण्ड तथा अनेकान्त दृष्टि का कितना सुन्दर समन्वय है! दोनों उनके लिए ग्राह्य थे।

सत्य एक है। वह देश, काल और व्यक्ति के भेद से विभक्त नहीं है। जो देश, काल और व्यक्ति के प्रभाव के कारण विभक्त हो सकता है वह धर्म नहीं हो सकता। भगवान् का मानना था कि आत्मा और धर्म अलग नहीं हैं। जहाँ धर्म है वहाँ भक्ति है। मुक्ति के लिए आत्मा का पवित्र होना बहुत ज़रूरी है। भगवान ने धर्म के बारे में कहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"वर्तमान जीवन के सुखों की,
परलोक-जीवन के सुखों की,
कीर्ति, प्रतिष्ठा आदि की कामना का त्याग करके केवल आत्मशुद्धि और जनकल्याण के लिए धर्म करो।"

भगवान् महावीर साम्ययोग चाहते थे। उनका सारा जीवन आत्ममय है। उनका सारा उपदेश आत्मा और परमात्मा की एकता को सिद्ध करता है। भगवान् की दृष्टि में सब जीव समान हैं। उनकी शिक्षा परत्व और ममत्व के समन्वय की शिक्षा है। परत्व से द्वेष बढ़ता है और ममत्व से राग। जब दोनों का समन्वय हो जाता है तब आत्मा सम हो जाती है। भगवान् की दृष्टि समन्वय की दृष्टि थी। वह तत्वज्ञानों का समन्वय चाहते थे। देह और आत्मा का समन्वय चाहते थे।

आज हमारा कोई काम आगे नहीं बढ़ता। अपने-अपने अभिमान के कारण एक दूसरे से संघर्ष बढ़ता है। व्यक्ति अपना अभिमान छोड़े, अपने आप को समाज का अंग माने, और समाज व्यक्ति का आदर करे; इस प्रकार दोनों का उचित समन्वय होगा, तो मानव-जीवन में निखार आयेगा। आत्मा और देह का समन्वय हम सीख जायें तो हमारी सारी समस्याओं का समाधान हो जाय। मनुष्य का सारा तत्त्व-ज्ञान सत्य की खोज का ज्ञान है। सत्य के विस्तार का ज्ञान है। यह हमारी समझ में आ जाय तो तत्त्वज्ञानों का सारा झगड़ा मिट जाये।

महावीर वचनामृत :—

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥
उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायामज्जव भावेणं, लोहं संतोसओ जिणे॥

अर्थ—क्रोध प्रीतिका, मान विनय का, माया मित्रता का और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोभ सारे गुणों का नाश करता है। अतः क्षमा से क्रोध को, नम्रता से अभिमान को, सरलता से माया को और सन्तोष से लोभ को जीतो। चेतन द्रव्य को जीवजीवास्तिकाय कहते हैं।

जीव के लक्षण:—

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उबओगो च एयं जीवस्स लक्खणं॥

अर्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग—ये सब जीव के लक्षण हैं। जीव दो प्रकार के होते हैं—संसारी और सिद्ध। संसार-सागर में कर्मबन्धन में फँसा हुआ मनुष्य संसारी; और संसार-सागर से पार हो जानेवाला अर्थात् कर्मबन्धन से मुक्त मनुष्य सिद्ध जीव कहलाता है।

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इह बोदि चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झइ॥

(उत्त० अ० ३६ गा० ५६)

अर्थ—सिद्ध जीव अलोक की सीमा पर जाकर रुकते हैं और लोक के अग्रभाग पर स्थिर होते हैं। वे यहाँ अर्थात् मनुष्यलोक में शरीर-त्याग करते हैं। तथा लोकाग्रभाग पर पहुंच कर सिद्ध-गति प्राप्त करते हैं सिद्ध पुरुष की गणना परमात्मा के रूप में होती है। उनका अरिहन्त भगवान् के समान वन्दनीय तथा पूजनीय माना जाता है। लोक के अग्रभाग पर एक निश्चल स्थान है जहाँ जरा, मृत्यु, रोग और दुःख नहीं हैं, परन्तु वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है। इस अवस्था को महर्षिगण ही प्राप्त करते हैं। वह संसारी जीव नहीं रहते और उनको किसी प्रकार का शोक नहीं होता।

आत्मा से कर्म चिपकता है तो वह अधोगति को प्राप्त होता है। जब आत्मा कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाता है, तब वह उत्तम गति को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त होता है अर्थात् लोकाग्र-भाग पर पहुंचकर स्थिर हो जाता है। यानी मोक्ष-अवस्था को प्राप्त करता है।

जब आत्मा नाविक बन कर शरीर की नौका को संसार-रूपी समुद्र से पार कर लेता है तब वह सिद्ध आत्मा कहलाता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप ये मोक्ष-मार्ग के साधन हैं। ज्ञान से तथ्य का ज्ञान होता है। दर्शन से तथ्य पर श्रद्धा होती है। चारित्र्य से कर्म का वेग रुकता है और तप से आत्मा की संपूर्ण शुद्धि होती है।

मनुष्य आत्मा के हित और अहित का ज्ञान प्राप्त करे और हितकर का आचरण करे। यह साधना-क्रम है।

जरा और मृत्यु से मुक्त होने के लिए धर्म एक आधार है, उत्तम शरण है।

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों का पालन करे। यह उसका धर्माचरण है।

जैसे-जैसे हिंसा-क्षेत्र बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे वैर का भी विस्तार होता जाता है। मनुष्य न स्वयं हिंसा करे और न उसका अनुमोदन करे। कृत, कारित और अनुमोदित—तीनों प्रकार की हिंसा का परित्याग किया जाय।

सभी जीव जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता। अतः निर्ग्रन्थ मुनि सदा प्राणिहिंसा का, जो भयंकर है, परित्याग करते हैं।

जीवन के वास्तविक तत्त्व को जाननेवाला कभी असत्याचरण नहीं करता। सत्य का आचरण करनेवाला मनुष्य जरा और मृत्यु को तैर जाता है।

सत्य के दस प्रकार हैं—जनपद सत्य, समस्त सत्य, स्थापना सत्य,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम सत्य, रूप सत्य, प्रतीत सत्य, व्यवहार सत्य अर्थात् लोक सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, और उपमा सत्य। इनका यथार्थ ज्ञान मनुष्य को होना चाहिए और सदा विवेक-बुद्धि से काम लेना चाहिए।

ब्रह्मचर्य उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, संयम और विनय का मूल है। जिसने अपने जीवन में एक ही व्रत—ब्रह्मचर्य-व्रत—की आराधना की हो, उसने सभी उत्तमोत्तम व्रतों की आराधना की है, ऐसा मानना चाहिए। साधक के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत अत्यन्त ज़रूरी है।

ज्ञानी पुरुष अपनी अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं को भी बटोर कर न रखे। संग्रह करने की वृत्तिवाले साधु नहीं, असाधु ही हो सकते हैं। संयमी पुरुष सदा अहिंसा, झूठ, चोरी, अभक्ष्य सेवन भोगलिप्सा तथा लोभ का परित्याग करे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् बुद्ध और बौद्ध वाङ्मय

प्रत्येक धर्म का उत्पत्तिस्थान एक ही महा भ्रातृसंघ (Great Brotherhood) माना गया है। प्रत्येक धर्म को उसके इतिहास और उसकी शिक्षा दोनों के सम्बन्ध में आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश में कसौटी पर कसा जाय तो स्पष्ट दिखाई देगा कि प्रत्येक धर्म संसार में अपना एक विशेष संदेश लेकर आविर्भूत होता है। प्रत्येक धर्म के सार-असार के भेद को समझकर केवल सार-तत्त्व को ही लेना चाहिए। सार-तत्त्व की कसौटी निम्न प्रश्नों का स्वीकारात्मक उत्तर है कि क्या यह तत्त्व पुरातन है ? क्या यह पुरातन ग्रन्थों में पाया जाता है ? क्या इसे धर्म-विशेष के संस्थापक अथवा उसके प्रवर्तक संतों का प्रमाण प्राप्त है ? क्या यह विश्व-व्यापी है ? और दूसरे धर्मों से इसका समन्वय हो सकता है ? अगर यह विवेक-कला हाथ लग जाय तो आज धर्म के नाम पर जगह-जगह जो संघर्ष दिखाई देता है, वह खत्म हो जाय। धर्म के द्वारा एकता स्थापित होनी चाहिए। धर्म मैत्री का सन्देशवाहक हो, विग्रह का नहीं।

बौद्ध धर्म इस कसौटी पर पूरा उतरता है। अध्यात्म योग की दृष्टि से दूसरे धर्मों के साथ इसकी एकरूपता है। बौद्ध धर्म हिन्दू-धर्म का ही दूसरा रूप है। बौद्ध तत्त्व में हिन्दू-आत्मा ही प्रकाशित हो रहा है।

मानव-जाति का लगभग एक-तिहाई भाग बौद्ध धर्म का अनुयायी है। बौद्ध-धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध, जिनका जन्म-नाम सिद्धार्थ था, का जन्म लगभग ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व कपिलवस्तु में हुआ था। सिद्धार्थ यानी अपने उद्देश्य को सिद्ध करनेवाला। कपिलवस्तु नेपाल में, काशी से सौ मील दूर उत्तर पूर्व की ओर है। आपके पिता का नाम राजा शुद्धोधन और माता का नाम रानी माया देवी था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार राजा अपने राजकुमार को टहलाने के लिए बाहर साथ ले गये। राजकुमार ने जहाँ प्रकृति का सुन्दर दृश्य देखा, वहाँ यह भी देखा कि हल में जुते हुए बैलों को बड़ी पीड़ा हो रही थी, उनके कन्धे जख्मी हो चुके थे। चिड़ियाँ छोटे-छोटे कीड़ों को खा रही थीं। बड़े पक्षी छोटे-मोटे पक्षियों का शिकार कर रहे थे। यह सब देखकर वह एक पेड़ के नीचे बैठे गये और काफी देर तक ध्यान में लगे रहे।

राजकुमार जब कुछ बड़े हुए तो उनकी शिक्षा-दीक्षा का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध किया गया। पढ़ने-लिखने में उन्होंने योग्यता दिखायी। राजकुमार का जीव-मात्र के प्रति असीम प्रेम बचपन में ही प्रकट होने लगा था। वैराग्य की भावना मन में रहने लगी। वे राजमहल के रहन-सहन को अपने विकास में बाधा मानने लगे। पिता ने संसार के मोहजाल में फँसाये रखने के लिए राजकुमार का विवाह राजकुमारी यशोधरा के साथ कर दिया। यशोधरा के साथ राजकुमार कुछ दिन राजमहल में बड़े आनन्द से रहे, परन्तु वैराग्य का विचार भी धीरे-धीरे जोर पकड़ता रहा। मनुष्य-जीवन में रोग, बुढ़ापा और मृत्यु के दृश्य देखकर वैराग्य और भी जोर पकड़ गया। इन्हीं दिनों रानी यशोधरा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राज्य में सब लोग खुशियाँ मनाने लगे, परन्तु राजकुमार को वह अपने लिए एक फन्दा मालूम हुआ। आपने संन्यास लेने का पक्का इरादा कर लिया। एक रात को रानी यशोधरा तथा प्यारे पुत्र को सोता हुआ छोड़कर, अपने राजसी वस्त्रों को त्याग दिया, केशों को काट डाला और संन्यास धारण करके समस्त मानव-जाति के दुःख-निवारण के लिए राजमहल से निकल पड़े। आलार, कालाम और उद्दालक जैसे महान् दर्शन-शास्त्रियों की शरण में रह कर दुःख का कारण और उससे मुक्ति का उपाय जानने का प्रयत्न किया, परन्तु सिद्धार्थ को निराश होना पड़ा।

आपने सत्य की खोज के लिए सर्वस्व त्याग किया। वर्षों तक तपस्वी जीवन व्यतीत किया, धर्म-शास्त्रों का अध्ययन किया और अन्त में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'गया' के नज़दीक बौद्ध गया के स्थान पर पहुंचकर फलगू नदी के किनारे एक पीपल—बोधि-वृक्ष के नीचे बैठकर कड़ी तपस्या करने लगे, जहाँ आपको ज्ञानप्राप्ति हुई। ज्ञान प्राप्त होने पर आप पर जीवन-मरण, सुख-दुःख का भेद खुल गया। पूर्ण सत्य के दर्शन हुए। आगे चलकर पूर्ण सत्य का दर्शन आपने व्यापक प्रचार द्वारा लोगों तक पहुंचाया।

बुद्ध भगवान् अपने युग के सबसे बड़े सुधारक थे। उनका जीवन-संदेश इस प्रकार है :—

१. केवल त्याग

मनुष्य केवल त्याग की भावना से सुखी हो सकता है। त्याग ही मनुष्य को जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त कर सकता है।

२. कर्म विचारधारा

भगवान् बुद्ध का यह अटल विश्वास था कि मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कर्मों से ही अपने जीवन को स्वर्ग अथवा नरक बना सकता है।

अमल से ज़िदगी बनती है जन्नत भी जहन्नुम भी।
यह खाकी अपनी खसलत में न नूरी है न नारी है॥

३. क़िस्मत

भगवान् बुद्ध क़िस्मत पर विश्वास नहीं करते थे। ज़ात-पाँत का भेद जन्म से नहीं, कर्म से मानते थे। ब्राह्मण और अछूत जन्म से नहीं हो सकते।

४. संघ

भगवान् बुद्ध ने मानव-भाईचारे के सिद्धान्त को फैलाने के लिए ही जन्म लिया था। भगवान् बुद्ध जनता-जनार्दन के सच्चे हितैषी थे। उन्होंने लोगों को संघ (लोकतन्त्र) बनाकर रहने का आदेश दिया।

५. पशु-बलि

भगवान् बुद्ध ने पुराने आर्य-धर्म के, अहिंसा के विचार को फिर से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों के सामने रखा। उनका विश्वास था कि पशु-वलि धर्म का अंग नहीं है। वह सहन-शीलता और प्रेम-धर्म के सबसे बड़े प्रचारक माने जाते हैं।

६. धर्म के तीन स्तम्भ

भगवान् बुद्ध धर्म के तीन स्तम्भ मानते थे : आचार, समाधि और ज्ञान। वे इन्हीं का प्रचार करते रहे। उपनिषदों का भी यही मत है।

७. स्त्री और पुरुष

स्त्री और पुरुष मानव-समाज के बराबर के दो अंग हैं। भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म में स्त्रियों को बराबर का स्थान दिया।

बौद्ध धर्म का सिद्धान्त

भगवान् बुद्ध का सबसे पहला उपदेश यह है कि मनुष्य को घोर तपस्या और जगत के सुख-विलास के 'वीच का मार्ग' ही अपनाना चाहिए और इसी 'वीच के मार्ग' से जीवन सफल बनाना चाहिए।

तीन प्रकार की शरण और पंचशील

मनुष्य को नित्यप्रति तीन प्रकार की शरण और पंचशील का विचार करना चाहिए। सबसे पहले बुद्ध भगवान् अर्थात् ज्ञानी और परम पूज्य भगवान् को नमस्कार किया जाये, फिर तीन प्रकार की शरण ली जाय :

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ।

इसे तीन बार दोहराया जाय। इसके पश्चात् पंचशील को दोहराया जाय :—

(१) मैं प्राणि-हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।
(२) मैं चोरी न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) मैं व्यभिचार से बचने की प्रतिज्ञा करता हूँ।
(४) मैं असत्य-व्यवहार न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।
(५) मैं नशीली वस्तुओं तथा अनर्थकारी कार्यों से बचने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

जीवन के तीन सत्य

(१) सुख की अपेक्षा दुःख अधिक है—जन्म दुःख है, रोग दुःख है, व्याधि दुःख है, अप्रिय वस्तु का संयोग दुःख है, प्रिय वस्तु का वियोग दुःख है, इष्ट वस्तु का प्राप्त न होना दुःख है।

(२) तृष्णा दुःख का कारण है जो लोभ और राग से युक्त है। तृष्णा के तीन रूप हैं—काम तृष्णा, भव तृष्णा तथा विभव तृष्णा।

(३) तृष्णा से सम्पूर्ण वैराग्य, तृष्णा का निरोध, त्याग-परित्याग, उससे छुटकारा, वासना का क्षय, यही दुःख से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है। वासना न रहने पर मानव दुःख से मुक्त हो जाता है।

बौद्ध धर्म का निचोड़

पापरहित जीवन व्यतीत करना, सबका भला करना और चित्त को पवित्र बनाना यही बौद्ध धर्म का आदेश है।

भगवान् बुद्ध की शिक्षा बौद्ध वाङ्मय के तीन भागों में मिलती है, जिन्हें 'त्रिपिटक' कहते हैं। 'विनय-पिटक' में नियम-उपनियमों का वर्णन है। बुद्ध भगवान् ने ७१ वर्ष की आयु में अपने महान् शिष्य कश्यप के प्रश्नों का उत्तर देते हुए जिन तात्त्विक सिद्धान्तों का विवेचन किया, वे भी विनय-पिटक में ही मिलते हैं। 'सुत्त पिटक' में बौद्ध सूत्रों का संग्रह है। सूत्र अर्थात् महावाक्य। 'अभिधम्म पिटक' में रहस्यविद्या भरी हुई है। रहस्यविद्या यानी बौद्ध धर्म के नैतिक उपदेश। बुद्ध भगवान् का जीवन आमरण इन उपदेशों के अनुरूप था। त्याग तथा प्रेम-भक्ति ने उन्हें मनुष्य से देव और देव से बुद्ध के पद पर पहुँचाया था।

"न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥" यमकवग्गो-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—"वैर से वैर का कभी शमन नहीं होता। वैर दुश्मनी से नहीं, अवैर से ही मिटेगा। यह सनातन धर्म है।"

निर्वाण प्राप्त करने के आठ उपाय

शील, सत्य-वाणी, सत्य-आचरण, जीवन-निर्वाह के लिए सत्य-साधन, चित्त की समाधि, सत्य-प्रयत्न, सत्य-चिन्तन, सत्य-ध्यान।

प्रज्ञा, सत्य प्रस्ताव, सत्य विचार। जब मनुष्य स्थिरचित्त तथा प्रज्ञा की अवस्था तक पहुंच जाता है तब निर्वाण को प्राप्त होता है। निर्वाण-प्राप्ति पर मनुष्य दुःख, ताप, मृत्यु तथा जन्म से मुक्त हो जाता है। मनुष्य के लिए यह अन्तिम लक्ष्य प्रार्थना और त्याग से प्राप्त नहीं होता, शुद्ध जीवन, शुद्ध विचार तथा शुद्ध ज्ञान से प्राप्त होता है।

बौद्ध धर्म में सहिष्णुता और प्रेम

बौद्ध धर्म की आध्यात्मिक विजय और सर्वप्रियता का एकमात्र रहस्य सहिष्णुता और प्रेम है। बौद्धधर्म के संस्थापक भगवान् गौतम बुद्ध की जीवन-शिक्षा में सहिष्णुता और प्रेम का प्रमुख स्थान था। एक बार एक ब्राह्मण ने गौतम बुद्ध और उनके धर्म की कड़ी आलोचना की। गौतम बुद्ध के शिष्य उसको बुरा-भला कहने लगे। तब बुद्ध भगवान् ने अपने शिष्यों से कहा कि अगर कोई मेरी या मेरे धर्म की आलोचना करता है तो आप उसके ख़िलाफ़ कुछ मत कहें और उस पर क्रोधित न हों। अगर आप ऐसा करेंगे तो आप अपने धर्म की बुनियाद ही खो देंगे। अगर हम चाहते हैं कि हमारा विचार हमारे विरोधी अपना लें, तो हमें अपने विरोधियों के प्रति आदर, प्रेम तथा सहिष्णुता की भावना ही अपने मन में रखनी होगी।

बौद्धधर्म की आचारसंहिता में प्रेम को सत्कर्म से ऊँचा स्थान दिया गया है। बुद्ध भगवान् का आदेश है—"सब सत्कर्मों की अपेक्षा प्रेम अधिक महत्त्व रखता है। प्रेम मानव-हृदय को विशाल बनाता है। प्रेम मनुष्य के जीवन को प्रकाश में लाता हैं और उसे आभा देता है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेमावतार यीशुख्रिस्त और उनका उपदेश

सारा विश्व अन्धकारमय है, यह हम जानते हैं। सर्वत्र दुःख, अज्ञान और मृत्यु का ही राज्य है। इनके कारण मनुष्य पाप से घिरा रहता है। पाप से बचने का एक-मात्र उपाय प्रभु-दर्शन है। प्रभु-दर्शन अर्थात् सुख का अनुभव करना, ज्ञान प्राप्त करना, दिव्य गति पाना। पाप-कर्म से मनुष्य प्रभु से अलग पड़ जाता है। मनुष्य अन्धकार से निकल कर उजाले में जाना चाहता है। भगवान् ने अपने इकलौते पुत्र ईसामसीह को मनुष्य के इस अन्धकार को दूर करने के लिए भेजा। ईसाई-धर्म का ऐसा विश्वास है।

'प्रभु ने विश्व-कल्याण के लिए अपने इकलौते पुत्र यीशुख्रिस्त को यहां भेजा। जो उसपर ईमान लायेगा, उसके पाप क्षमा कर दिये जायेंगे और उसे शाश्वत आनन्द प्राप्त होगा।"

—जाह्न ३ : १६

"प्रभु-सत्ता तथा विश्व-मानव के कल्याण तथा शान्ति के लिए हम कामना करें।" लूकस २ : १४

बैथलहम के शान्त अस्तबल में क्रिस्मस की पहली रात को प्रभु यीशुख्रिस्त का जन्म हुआ। माता मेरी ने नन्हे मसीह को गोद में ले रखा था। आसमान पर तारे चमक रहे थे, जमीन पर चाँद उतर आया था।

जोज़फ़ बड़े प्यार से मेरी और नौनिहाल की ओर देख रहा था। दोनों को प्रसन्न मुद्रा में पाकर जोज़फ़ मन-ही-मन प्रभु को धन्यवाद दे रहा था। 'कोई आ रहा है' यह कहकर जोज़फ़ द्वार की ओर बढ़ा। पास की पहाड़ी के कुछ चरवाहे प्रभु-दर्शन के लिए अन्दर आये। "एक प्रभु-दूत ने हमें सन्देश दिया है कि प्रभु के पुत्र का यहाँ अस्तबल में जन्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ है। हम उसके दर्शन के लिए आये हैं।" उन्होंने बालक को देखा और प्रसन्नचित्त लौट गये। माता मेरी भी अत्यन्त प्रसन्न थीं।

यीशुख्रिस्त का बचपन जोज़फ और मेरी के साथ नज़रथ ग्राम में बीता। वह अपने परिवार में सबसे बड़ा और लाड़ला बच्चा था। यीशु बड़ा होकर जोज़फ की बढ़ईगीरी के काम में मदद करने लगा। परिवार बहुत बड़ा था। सबको जीवन-निर्वाह के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। यीशुख्रिस्त एक होनहार बालक था। उसके दिल में भगवान् और मनुष्यों के लिए बड़ा प्रेम था। वह अपनी आयु के दूसरे बच्चों को लकड़ी के खिलौने बना कर देता तथा उनको रोचक कहानियाँ सुनाता था।

यीशुख्रिस्त को जोजफ और मेरी का तो प्यार मिलता ही था; पड़ोसी और मित्र भी उसे प्यार करते थे। यीशु ईमानदार, सबसे प्रेम करनेवाला, मेहरबान और सहयोग की भावना से शराबोर था।

एक बार मसीह के दर्शनों के लिए कुछ लोग आये। मसीह सबको खाना खिलाना चाहते थे, परन्तु उसकी कोई व्यवस्था न थी। एक लड़के के पास ५ रोटी और २ मछली थी। वह उसने मसीह को भेंट कर दी। मसीह ने उनके टुकड़े करके सबको बाँट दिया। सबने पेट भर खाना खाया। मसीह का यह चमत्कार देखकर लोग बड़े हैरान हुए।

मसीह की 'अच्छे पड़ोसी' की कहानी प्रसिद्ध है। एक बार एक यात्री अकेला यात्रा कर रहा था। रास्ते में डाकुओं ने उसे लूट लिया तथा घायल कर दिया। थोड़ी देर बाद मन्दिर का पुजारी वहाँ से गुजरा। उसने यात्री की ओर कोई ध्यान न दिया! तत्पश्चात् पुजारी का सहायक वहाँ से निकला, परन्तु उसने भी यात्री की पुकार सुनी-अनसुनी कर दी। अन्त में एक मुसलमान व्यापारी वहाँ पहुंचा। वह गधे पर सवार था। उसने यात्री की मरहम पट्टी की और उसे गधे पर बिठा कर पास के मुसाफिरखाने में ले गया। रात-भर सेवा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और दूसरे दिन मुसाफिरखाने के अधिकारी को कुछ रकम दी ताकि वह यात्री के स्वस्थ होने तक उसकी सेवा कर सके। व्यापारी ने यह भी कहा कि अगर कुछ अधिक खर्च हुआ तो वह वापिसी पर चुका देगा। यात्री यहूदी था। उन दिनों मुसलमानों और यहूदियों का आपस में संघर्ष चलता था, फिर भी व्यापारी ने उदारता से काम लिया। मसीह ने इस प्रकार पड़ोसी से प्यार करने की बात कही थी।

महात्मा 'जान' का उपदेश : जब यीशु तीस वर्ष के थे तो उन्होंने सुना कि पड़ोस के एक जंगल में एक महात्मा आये हुए हैं. जो लोगों को उपदेश करते हैं कि प्रभु के राज्य का समय आ गया है। यीशु उनके उपदेश से बहुत प्रभावित हुए। वह बहुत दिनों तक 'जान' के साथ जंगल में ही रहे। 'यीशु' भी 'जान' की तरह प्रचार करने लगे। उनके उपदेशों का सार इस प्रकार है :—

१. प्रभुराज्य के लिए यह आवश्यक है कि हम मानव-मानव सब एक हो जायें। हम अपने लिए सोचना छोड़ कर पूरे मानव-समाज के लिए सोचें। सब एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहें। प्रभु-राज्य अपने आप नहीं आयेगा। उसकी स्थापना हम सब मिलकर करेंगे। प्रभु-राज्य समय अथवा स्थान से बन्धा हुआ नहीं है। प्रभु हम सब में हैं। हमारी आत्मा परमात्मा का ही एक स्वरूप है।

२. प्रभु का राज्य निराला होगा। प्रभु-राज्य में अहंकार के स्थान पर नम्रता होगी। प्रभु-राज्य सचाई और स्वर्ग का राज्य होगा।

३. किसी की हत्या करना बुरा है, परन्तु किसी पर क्रोध करना अथवा किसी को गाली देना भी उतना ही बुरा है।

४. पर-स्त्री से व्यभिचार करना बुरा है। केवल इतना ही नहीं, किसी स्त्री को मन में बुरे विचार रख कर देखना भी उतना ही बुरा है।

५. अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से देने की बजाय अपना दूसरा गाल भी उसकी ओर फेर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो। अगर कोई तुम्हारा कुर्त्ता छीनना चाहता है, तो उससे लड़ने की बजाय उसे अपना कोट भी दे दो। बुराई का बदला भलाई से दो। अपने शत्रु को मित्र समझकर उससे प्रेम करो। और उसके भले की बात सोचो। सब मनुष्य एक ही प्रभु के पुत्र हैं, सब भाई-भाई हैं। सब के साथ समान भाव से प्रेम करो।

६. हमें परमात्मा और अपने पड़ोसी को अपनी ही तरह प्यार करना चाहिए। हम अपने साथ जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा दूसरों से करते हैं, हम भी उनसे वैसा व्यवहार करें। हमें जो बुरा लगता है, वह दूसरों को भी बुरा लगता हैं। धर्म-श्रद्धा, ईश्वर-श्रद्धा का सार यही है। प्रभु के राज्य की यही इच्छा है।

७. मनुष्य के लिए धर्म-मार्ग सबसे अच्छा मार्ग है। हम अपने अच्छे कर्मों से परमात्मा तक पहुंच सकते हैं। प्रभु का राज्य लाना हमारे अपने बस की बात है। जिस प्रकार एक छोटा-सा बीज धीरे-धीरे एक बड़ा पेड़ हो जाता है, उसी प्रकार स्वर्ग के राज्य के लिए भी हमारे छोटे-छोटे पुण्य-कर्मों से बहुत बड़ा काम हो सकता है।

८. हमारी प्रार्थना केवल दिखावे के लिए न हो। एकान्त में जहाँ हमें कोई देखनेवाला न हो, हम नम्र भाव से प्रभु के चरणों में प्रार्थना करें। हमारी आत्म-शक्ति पवित्र हो। हम अपनी इच्छा से नहीं, प्रभु-इच्छा से जीवन व्यतीत करें। प्रभु हामरे और हमारे भाइयों के पापों के लिए क्षमा करने अथवा बुराई से बचने में हमारी सहायता करें।

९. मनुष्य अपने बुरे कामों के लिए सच्चे दिल से पश्चात्ताप करे और आगे के लिए वैसा न करने की प्रतिज्ञा करे तो वह स्वर्ग के राज्य का अधिकारी बनता है।

१०. प्रभु के राज्य में मानव का जीवन अपनी सेवा के लिए नहीं, दूसरों की सेवा करने के लिए होना चाहिए। मानव-मानव में ऊँच-नीच का भेद नहीं होना चाहिए। जो अपने आपको नम्र और सबसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तिम मानता है, फल की आशा नहीं करता, वही स्वर्ग के राज्य का अधिकारी बनता है।

११. मानव ईश्वर की प्रतिमूर्ति है अर्थात् जो गुण ईश्वर में हैं, वे गुण किसी अंश में मानव में भी हैं। मानव किसी भी अवस्था में हो, उसमें दैवी प्रकाश की झलक रहती ही है। प्रभु के राज्य के लिए मनुष्य को निर्धन, पतित और कमज़ोर मनुष्य की सेवा का जीवन अपनाना होगा।

पहाड़ी का उपदेश—प्रभु यीशु मसीह का पहाड़ी का उपदेश बहुत प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है :—

"धन्य हैं वे जो मन के दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। धन्य हैं वे जो पश्चात्ताप करते हैं, क्योंकि वे शान्ति पायेंगे। धन्य हैं वे जो नम्र हैं, क्योंकि वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे। धन्य हैं वे जो धर्म के भूखे और प्यासे हैं, क्योंकि वे तृप्त किये जायेंगे। धन्य हैं वे जो दयावान् हैं, क्योंकि उनपर दया की जायेगी। धन्य हैं वे जिनके मन शुद्ध हैं, क्योंकि वे प्रभु के दर्शन कर सकेंगे। धन्य हैं वे जो मेल करानेवाले हैं, क्योंकि वे परमात्मा के पुत्र कहलायेंगे। धन्य हैं वे जो धर्म के कारण सताये जाते हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। जो कोई हत्या करेगा वह कचहरी में दण्ड के योग्य होगा। जो मनुष्य अपने भाई पर क्रोध करेगा, वह भी कचहरी में दण्ड पायेगा। जो कोई किसी स्त्रीको बुरी नज़र से देखेगा वह अपने मन में उससे व्यभिचार कर चुका। अगर तेरी दाहिनी आँख तुझे धोखा दे तो उसे निकाल कर फेंक दे, ताकि तेरा सारा शरीर नरक में न डाला जाय। बुराई का बदला बुराई से न देना। जो कोई तेरे एक गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी ओर दूसरा गाल भी फेर दे। अपने दुश्मनों से प्रेम कर। और अपने सतानेवालों के लिए प्रार्थना कर। अगर तू एक हाथ से दान करे तो दूसरे हाथ को उसकी जानकारी न हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईसाई धर्म की प्रार्थना—"हे हमारे पिता ! तू जो स्वर्ग में है, तेरा नाम पवित्र माना जाये। तेरा राज्य आये, तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही इस पृथ्वी पर भी हो। हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे। और जिस प्रकार हमने अपने अपराधियों को क्षमा किया है, वैसे ही तू भी हमारे अपराधों को क्षमा कर और हमें परीक्षा में न डाल, परन्तु बुराई से बचा। क्योंकि राज्य, पराक्रम और महिमा सदा तेरे ही हैं। आमीन !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हज़रत मुहम्मद और इसलाम

हज़रत मुहम्मद का जन्म हज़रत ईसा के ५७० वर्ष बाद मक्का में हुआ। उस समय अरब देश की हालत अत्यन्त शोचनीय थी। धर्म के नाम पर अधर्म का राज था। मूर्ति-पूजा का रिवाज था। नस्तूरियान, इरयान, सबलियान तीन बड़े धार्मिक सम्प्रदाय थे। इनके अतिरिक्त कई छोटे-बड़े सम्प्रदाय भी थे। एक सम्प्रदाय हनीफ था जिसका सम्बन्ध किसी धार्मिक सम्प्रदाय से न था। कहीं-कहीं ईसाई और यहूदी-धर्म के अनुयायी भी थे। मक्का में बहुत-से लोग ईसाई-धर्म में विश्वास रखते थे और मदीना यहूदियों का गढ़ था। सूर्य, चन्द्र, तारों, फरिश्तों और उनकी मूर्तियों की पूजा होती थी। पुराने अरबों में सूर्य, चन्द्र आदि से सम्बन्धित सात मन्दिर हुआ करते थे। पूजा के भिन्न-भिन्न देवताओं के अलावा वे एक महान् शक्ति में भी निष्ठा रखते थे जिसे वे अल्लाह के नाम से पुकारते थे। लोगों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में धर्म के लिए कोई स्थान नहीं था। मूर्ति-पूजा की यह अवस्था थी कि इसके लिए मानव-हत्या भी ठीक मानी जाती थी। लोग नैतिक क्रान्ति चाहते थे। ऐसे समय हजरत मुहम्मद जैसे अल अमीन की अत्यन्त आवश्यकता थी जो एक नये धर्म की नींव डाल सके। अल अमीन अर्थात् विश्वासपात्र।

हज़रत मुहम्मद के जन्म से पूर्व ही उनके पिता परलोक सिधार गये थे। जब वह ६ वर्ष के थे, तब उनकी माता का भी देहान्त हो गया। उनका लालन-पालन उनके चाचा अबुतालिब द्वारा हुआ। उनको घर पर अरबी की शिक्षा दी गयी। जब वह २५ वर्ष के हुए, तब उनके चाचा अबुतालिब ने उनको एक विधवा 'खदीजा बेगम' के यहाँ ऊँट हाँकने का काम दिलवा दिया। वहाँ रहते हुए हज़रत मुहम्मद ने एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार सीरिया को जानेवाले एक व्यापारिक काफिले का सफल मार्ग-दर्शन किया। ख़दीज़ा वेगम उनसे बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपनी बहन से उनका विवाह रचा दिया। इस प्रकार मुहम्मद एक प्रभावशाली धनवान् बन गये। विवाह के पश्चात् उनका मोह व्यापारिक काम से हटने लगा। वह दिन-रात प्रभु-भक्ति में लीन रहने लगे। ४० वर्ष की आयु में उनको इलहाम हुआ। वह महसूस करने लगे कि उनके जीवन का मिशन अरबों में नैतिक मूल्यों का प्रचार करना, मूर्ति-पूजा को खत्म करना तथा 'एक प्रभु' की पूजा सिखाना है, अन्ध-विश्वास और दूसरी बुराइयों को दूर करना है। हजरत मुहम्मद के इस आन्दोलन के कारण लोग उनका विरोध करने लगे। उनके साथियों को नाना प्रकार के कष्ट देने लगे। कड़कती धूप में गरम रेत पर बिठाना और ऊपर से गरम रेत डालना कष्ट देने का एक तरीका था। विरोध इतना बढ़ा कि हज़रत मुहम्मद को मक्का छोड़कर मदीना जाना पड़ा। परन्तु उनका उत्साह कम न हुआ और उनका धर्म-प्रचार जारी रहा।

वह अकेला ही चला था जानिबे मंज़ल मगर
लोग साथ आते गये और कारवां बनता गया।

धीरे-धीरे उनका नया धर्म-प्रचार ज़ोर पकड़ने लगा। ४ वर्ष में ४० लोगों ने इसलाम-धर्म अपनाया। हज़रत मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या बढ़ती गयी और उनका व्यक्तित्व ऊपर उठता गया। अरब, मिश्र, यूनान, ईरान और अन्य देशों में इसलाम के प्रचार के लिए चारों ओर मिशनरी जाने लगे। मक्का के लोगों ने भी इसलाम के प्रभाव को स्वीकार किया। पुराने विचार के लोगों को यह पसन्द न था। एक दिन एक यहूदी ने हज़रत मुहम्मद को विष खिला दिया। इस प्रकार वह शहीद हो गये।

उनका अन्तिम आदेश था—"मनुष्य को अपनी हिम्मत से दुनिया की ज़ंजीरों को तोड़ फेंकना है और उसे प्रभु के दरबार में हाज़िर हो कर प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त करना है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हज़रत मुहम्मद नहीं रहे, परन्तु उनका नाम और काम सदा के लिए रहेगा। उनकी धर्मनिष्ठा की कोई बराबरी नहीं कर सकता। उनकी आध्यात्मिक शक्ति सदा के लिए उनकी याद दिलाती रहेगी।

हज़रत मुहम्मद का जीवन अत्यन्त सादा था और उनका दैनिक खर्च बहुत कम था। वह अपने लिए जूते स्वयं सी लिया करते थे। वह अपने फटे-पुराने कपड़ों में स्वयं पैबन्द लगा लिया करते थे। वह अपने मोची आप थे। वह अपने दर्जी आप थे। वह अपना सारा काम स्वयं करते थे। उनका सादा, दिल को लुभानेवाला, ऊंचा और सच्चा जीवन था। भगवान् के दूत को ऐसा रहन-सहन ही फबता है।

हज़रत मुहम्मद केवल आध्यात्मिक नेता ही नहीं, वह राजनीतिक नेता भी थे। कुरान उनकी दैवी और पवित्र पुस्तक है। कुरान मानवीय जीवन को ऊँचा उठानेवाली लाजवाब पुस्तक है। हज़रत मुहम्मद ने यहूदी धर्म से 'प्रभु एक है' का सन्देश ले लिया। ईसाई धर्म का नैतिक जीवन का ऊंचा आचरण अपनाया। ईसा प्रभु का पुत्र है, यह उनको स्वीकार नहीं था। उनके सिद्धांत के अनुसार, प्रभु के सन्देश-वाहक हो सकते हैं, परन्तु स्वयं प्रभु मानव-शरीर नहीं धारण कर सकता। इसलाम में अवतारवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। इसलाम ने मूर्ति-पूजा के विरुद्ध बहुत बड़ा जिहाद किया।

एक बार मदीना में अरबों, ईसाइयों और यहूदियों ने आपसे प्रश्न पूछा—"आप हमें क्या शिक्षा देना चाहते हैं?" हज़रत मुहम्मद ने उत्तर दिया, "मेरा सन्देश है—एक प्रभु के अस्तित्व में विश्वास रखो। प्रभु की आध्यात्मिकता और सत्यता में विश्वास रखो। निःसन्देह प्रभु क्षमावान् है, करुणावान् है। प्रभु के प्रत्येक दूत और फरिश्ते ने अध्यात्म और सत्य का सन्देश दिया है। मुझे प्रभु मत समझो। मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। मैं मनुष्य की तरह गलती कर सकता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप अपने विचार और आचरण को पवित्र बनायें।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवीं शताब्दी में जब हज़रत मुहम्मद ने इसलाम-धर्म की नींव डाली, उस समय अरब देश की हालत बहुत बुरी थी। लोग छोटे-छोटे कबीले बनाकर रहते थे। नैतिक जीवन का कोई ऊँचा आदर्श नहीं था। सामाजिक रहन-सहन की जानकारी न थी। मानवीय मूल्यों का कोई ऊँचा स्तर नहीं था। हजरत मुहम्मद ने इन हालात में नये धर्म की नींव डालकर लोगों का एकीकरण किया, एक अच्छा शासन स्थापित किया। जो लोग व्यक्तिगत या पारिवारिक निष्ठा पर ही भरोसा रखते थे, वह अब राष्ट्र-धर्म में विश्वास करने लगे। इसलाम अरब से आरम्भ होकर ईरान, मिश्र, तुरकी, अफगानिस्तान, ईराक, यूनान और हिन्दुस्तान आदि कई देशों में फैल गया। हर जगह धर्म और पवित्र आचरण का प्रचार होने लगा। कुरान इसलाम की पवित्र पुस्तक है। कुरान के बारे में स्वयं प्रभु का संदेश है :

"हमने कुरान के रूप में 'वही' भेजी है। यही प्रभु की तालीम है। यही प्रभु का धर्म है। इसपर अमल करो और प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त करो।"

कुरान को छोड़कर इसलाम-धर्म की दो और पुस्तकें भी आदर से पढ़ी जाती हैं। एक है हज़रत मुहम्मद का जीवन-चरित्र जिसका नाम 'हसना' है। और दूसरी है 'हदीस' जिसमें हज़रत मुहम्मद के प्रवचन हैं। ये दोनों पुस्तकें हज़रत मुहम्मद के जीवन के पश्चात् लिखी गयी मालूम होती हैं। परन्तु इनमें मानवीय जीवन के उद्देश्य और आध्यात्मिक जीवन के ऊँचे सिद्धांत हैं। हज़रत मुहम्मद की शिक्षा के तीन स्वर्ण सिद्धान्त हैं :

१. मनुष्य का आचरण मनुष्य के भाव से पहचाना जाता है।

२. खुदा एक है और उसका सानी नहीं। एक खुदा की पूजा की जाय। दान दिया जाय।

यहाँ दान का अर्थ केवल भिक्षा देना नहीं। अच्छे काम करना दान है। किसी दुखी का दुःख दूर करना दान है। लोगों को अच्छे काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने के लिए प्रोत्साहित करना दान है। भूले-भटके यात्री को रास्ता दिखाना दान है। रास्ते के कंकड़ और काँटे हटाना दान है। भूखे, प्यासे और नंगे मनुष्य की जरूरत पूरी करना दान है।

रमजान के महीने में रोजा रखा जाय और यथाशक्ति हज की जाय।

३. एक खुदा के सिवाय किसी से न डरें। बुरे कामों से बचें। जीवन का आचरण पवित्र रखें। सबसे समान भाव से व्यवहार करें।

इसलाम का अर्थ है, इलम इलाही, ब्रह्म विद्या, तसव्वफ। इसलाम की गिनती ईश्वरीय ज्ञान देनेवाले महान् धर्मों में होती है। इसलाम अर्थात् खुदा की मरजी के मुताबिक काम करना। अपने आपको खुदा के हवाले कर देना। इसलाम मानवीय भाईचारे का दूसरा नाम है। इसलाम मानता है कि खुदा एक है। वही अल्लाह है और मुहम्मद उसका रसूल है। सादिक वही है जो अपने भाई से प्यार करता है। खुदा उससे प्यार नहीं करता जो खुदा के बन्दों से प्यार नहीं करता। जो खुदा के बन्दों की भलाई के काम में लगा रहता है, वह खुदा के नजदीक रहता है। भूखे को खाना खिलाना, प्यासे को पानी पिलाना, रोगी की सेवा करना, खुदा के बन्दों के साथ सचाई और न्याय से पेश आना, दुखी मनुष्य का दुःख दूर करना। यह इसलाम की शिक्षा है।

इसलाम समाज-सेवा का बहुत बड़ा समर्थक है। जो सेवक है, वही सेव्य है। इसलाम नैतिक आचरण पर बहुत जोर देता है। लड़ना झगड़ना नहीं सिखाता। इसलाम की शिक्षा है कि हम केवल अपनी हिफ़ाजत के लिए हाथ उठायें। जो मनुष्य दूसरे मनुष्यों पर जुल्म करता है, उनको भय-भीत करता है, उसे खुदा सजा देता है। इसलाम हिंसक धर्म-परिवर्तन के सख्त खिलाफ है। इसलाम दुनिया में नेकी फैलाने के लिए ही आया है।

एक बार हजरत मुहम्मद ने किसी से पूछा—'नेकी क्या है?' हज़रत मुहम्मद ने उत्तर दिया—'किसी को गाली मत दो, नेक काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करो, अपने भाई से प्रेम करो, किसी के दोष मत निकालो, पापी मनुष्य पर दया करो तथा उसे नेकी के रास्ते पर डालने की कोशिश करो।' इसलाम में गाली देना, क्रोध करना, वदला लेना; किसी की निन्दा करना, लालच करना, धोखा देना, झूट बोलना, वदनियती करना, नशा करना, चापलूसी करना, लहू बहाना, रिश्वत देना और लेना, कंजूसी करना, हिंसा करना, युद्ध करना, ये सब बुरे काम माने गये हैं। भाईचारा वढ़ाना, दान देना, शुद्ध और पवित्र रहना, क्षमा करना, सच्चाई और न्याय का काम करना, दया करना, सच बोलना, स्थित-प्रज्ञ होना, विश्वास करना, ये सब नेक काम माने गये हैं।

प्रत्येक मुसलमान के लिए नीचे लिखी निष्ठाएँ जरूरी हैं :

(१) खुदा की हस्ती में यकीन (२) खुदा के रसूलों में यकीन (३) फ़रिश्तों में यकीन (४) पवित्र पुस्तकों में यकीन (५) सजा और जजा या कयामत के दिन में यकीन।

कुरान के ११४ अध्याय हैं। इनमें अनगिनत सूरह हैं। प्रत्येक सूरह का अलग-अलग नाम है। हजरत मुहम्मद १३ वर्ष मक्का में और १७ वर्ष मदीना में रहे। इन दिनों उनको जो इलहाम हुआ, उसे क्रमवार पवित्र पुस्तक में जोड़ दिया गया। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में "विस्म अल्लाह" आता है जिसका अर्थ है 'अल्लाह के नाम पर।' कुरान की भाषा शुद्ध और पवित्र है। साहित्य की दृष्टि से वह एक अच्छा दर्शनशास्त्र है। आध्यात्मिक विचार से वह एक लासानी किताव है। अरवी भाषा में यह एक आला तफ़सीर है।

हजरत मुहम्मद का एक प्रसिद्ध कथन है—"ज्ञानी की सियाही वलिदान के लहू से अधिक शक्तिशाली है।" उनका सन्देश है—"ज्ञान प्राप्त करो। जो मनुष्य प्रभु-मार्ग में दूसरों को शिक्षा देने का काम करता है, जो ज्ञान की खोज करता है, वह खुदा की पूजा करता है। ज्ञान से मनुष्य को विवेक प्राप्त होता है।" इससे अनुमान हो सकता है कि उनके दिल में ज्ञान-प्राप्ति के लिए कितना ऊंचा स्थान था। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलाम और सामाजिक भाईचारा

इसलाम के विकास से पूर्व बेबीलोनिया, मिस्र, चीन, हिन्दुस्तान. यूनान और रूम के पुरातन मानवीय भाईचारे का नाता टूट चुका था। सब जगह लोग अलग-अलग गुटों में बट चुके थे। जाति-पाँति का बोलवाला था। लोग सामाजिक जीवन का विचार छोड़ कर केवल परिवार-पोषण के विचार से जीवन व्यतीत करते थे। वंश का सरदार पूरे वंश का शासक होता था। यहाँ तक कि सरदार अपने लड़के और लड़कियों को बेच सकता था और सदा के लिए उनको दास बना सकता था। स्त्रियों की दशा दयनीय थी। उनका सारा जीवन पुरुषों की गुलामी में गुजरता था। भारत के प्रसिद्ध विधान-निर्माता "मनु" का कथन है कि "लड़की बचपन में अपने पिता के आधीन रहे, जब वह युवती हो जाय तो पति के, जब उसके पति की मृत्यु हो जाय तो पुत्र के आधीन रहे ; स्त्री कभी स्वतन्त्र न रहे।" हिन्दू-विवाह-विच्छेद नहीं हो सकता था। विधवा पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी और स्त्री को पुरुष की मृत्यु हो जाने पर सती होना पड़ता था। यूनान और हिन्दुस्तान में ऊंची जाति की स्त्रियों को परदे की चार-दिवारी में रहना पड़ता था। परदे का रिवाज आज भी एशिया के बहुत देशों में है। एक स्त्री के अनेक पति हो सकते थे और एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ हो सकती थीं। यह कुप्रथा हिन्दुस्तान तथा तिब्बत के पहाड़ी क्षेत्र में आज भी पायी जाती है। हिन्दुस्तान में पुरोहित और पुजारी की बहुत प्रतिष्ठा थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भेद कर्मानुसार न मान कर जन्म से माना जाने लगा था। राजा का लड़का राजा बन जाता था। पुरोहित और पुजारी का लड़का पुरोहित और पुजारी हो जाता था। किसान का लड़का किसान और इसी प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शूद्र का लड़का शूद्र ही रहता था। उसका स्थान समाज में नीचा माना जाता था। आर्य लोग अपने आपको भारत के आदिवासी कोल, द्रविड़ आदि से ऊँचा और पवित्र समझते थे। धर्म के नाम पर अन्धविश्वास का आधिपत्य था। रोम में अमीर और ग़रीब का भेद पाया जाता था। इंग्लैण्ड में राजा और राज्यकुल के लोगों का सामान्य लोगों से भेद स्पष्ट दिखाई देता था। धर्म और सम्प्रदाय का शासन था। अधिकारी वर्ग धर्म और सम्प्रदाय के नाम से इतने तंग थे कि वे पुरोहित, पुजारी और पादरी की सम्मति के बिना कुछ भी नहीं कर सकते थे। रोम, यूनान, फारिस और हिन्दुस्तान में धर्म और सम्प्रदाय का एक-समान बोलवाला था। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर समस्त सामाजिक व्यवस्था का विघटन हो चुका था। ऐसी अवस्था में आशा की एक ही किरण शेष रह गयी थी और वह थी यूनान में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू की, और हिन्दुस्तान में श्रीकृष्ण और महात्मा बुद्ध की शिक्षा। मानवता और मानव-प्रेम का प्रभावशाली विचार हज़रत मूसा और हज़रत ईसामसीह ने भी फैलाया, परन्तु दुनिया के लोगों ने इसे पूर्णरूपेण अपनाया नहीं था।

ऐसी परस्थिति में इसलाम का प्रादुर्भाव हुआ। इस समय अरब की दशा भी दयनीय थी। प्रत्येक सम्प्रदाय और गुट अपने आप को उच्च मानता था। परस्पर लड़ाई-झगड़ों का कोई ठिकाना न था। लूटमार का बाजार गर्म था। दास-प्रथा और व्यभिचार आम था। लड़की के जन्म को दुर्भाग्यपूर्ण समझा जाता था। मानवता, भाईचारा और सामाजिक समानता नाममात्र को भी नहीं थे। सब जगह मूर्तिपूजा की जाती थी। "ईश्वर एक ही है" में लोगों का विश्वास नहीं था। इस प्रकार की विघटित सामाजिक व्यवस्था का इसलाम को सुसंगठन करना था। वस्तुतः इसलाम के सामने बहुत बड़ा काम था। इन्सान को एक केन्द्र पर लाने के लिए बहुत आवश्यक था कि लोगों के सामने कोई एक कार्यक्रम रखा जाय। इसलाम के "ईश्वर की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक मात्र प्रभुसत्ता" के विश्वास ने सामाजिक व्यवस्था स्थिर करने में बहुत बड़ा काम किया। "खुदा (ईश्वर) एक है और वही सब का खुदा (स्वामी) है।" इसलाम का आधार ही 'एकेश्वरवाद' है। कुरान की शिक्षा है :—

"निष्ठापूर्वक एक मात्र खुदा (ईश्वर) की सहायता पर विश्वास रखो और उसका आधार न छोड़ो।" कुरान की शिक्षा के अनुसार ईश्वर की सृष्टि में कोई भी वस्तु बेकार नहीं। प्रत्येक वस्तु का प्राकृतिक रचना में अपना स्थान है और मनुष्य अपनी उन्नति के लिए उसका उपयोग कर सकता है। प्रकृति की इस व्यवस्था से लाभ उठाकर मनुष्य अपना शारीरिक, आर्थिक और आध्यात्मिक विकास कर सकता है। इसलाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद साहब ने निम्न बातों पर बहुत बल दिया :

(१) इसलाम में प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए उच्च ज्ञान की खोज उसका पहला कर्तव्य था।

(२) जन्म से मृत्यु-पर्यन्त मनुष्य को उच्च ज्ञान की खोज करते रहना चाहिए।

(३) उनका कहना था कि अज्ञान की असारता का एक मात्र प्रतिकार विज्ञान है। सामाजिक विषमता तथा अन्याय की रामबाण औषधि भी विज्ञान है। विज्ञान का अध्ययन रोजे (पवित्र व्रत) के समान है। विज्ञान की शिक्षा इबादत (भक्ति) के समान है। विज्ञान मनुष्य के विचार में मानवीय भाईचारे और प्रेम की बहुत ऊँची भावना पैदा कर सकता है। वह बिखरी हुई सामाजिक व्यवस्था को सुसंगठित करने में सहायक होता है। हज़रत मुहम्मद की इस शिक्षा का ही प्रभाव था कि मुसलमानों ने कला और विज्ञान को प्रोत्साहित किया और वे ऊँचे ज्ञान के प्रकाश-स्तम्भ बने। बगदाद और कारडोन के विश्वविद्यालय इस तथ्य के साक्षी हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलाम में सामाजिक भाईचारे पर वहुत बल दिया गया है। इसलाम की शिक्षानुसार व्यक्ति और समाज एक दूसरे से इस प्रकार गुथे हुए हैं कि इनको एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। सभी मनुष्य धर्म, जाति, रंग, वंश के भेद के बिना एक-दूसरे की सहायता, शक्ति और सामाजिक विधान में बधे हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है जिस के अभाव में समाज छिन्न-भिन्न हो जाता है।

भौतिक जगत् का हम एक अंश हैं, जिसकी शक्ति और विशेष प्रक्रिया से हमारी शक्ति बनती है। जीवन के विकास, स्वास्थ्य, रोग, जन्म, मृत्यु के विधान में भी हम बँधे हुए हैं। ऐसे विधान का ज्ञान और नियमन हमारे लिए आवश्यक है। सहानुभूति और मानवीय करुणा हमें एक-दूसरे से मिलाये रखती है। सामाजिक व्यवस्था तभी स्थिर रह सकती है जब हम समाज को एक बनाने में सहायक होते हैं। सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में हम सबका समान भाग है और हमें एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। आध्यात्मिक विकास से हमारा विश्वास और निष्ठा सुदृढ़ होती है। आध्यात्मिक शक्ति द्वारा हम समाज को आगे ले जा सकते हैं।

हज़रत मुहम्मद ने इन्सान के प्रत्येक कर्म के गुण-दोष दो रूप में बताये थे। गुण अर्थात् अच्छी प्रक्रिया, और दोष अर्थात् विकृति। जीवन के सत्कर्म से मनुष्य ऊपर उठता है। जो कर्म मानवीय नैतिकता की कसौटी पर पूरा उतरता हो वह अवश्य करना चाहिए। जो नैतिकता के ऊँचे आदर्शों के अनुरूप न हो उसे त्याग देना चाहिए। यही समाज का वह ऊंचा आदर्श है जो मनुष्य को संकट और दुःख से मुक्त करता है। इसलाम का आधार यही ऊंचा आदर्श था।

इसलाम की दृष्टि में रंग अथवा नस्ल, गोरे अथवा काले, सैनिक-असैनिक, शासक अथवा शासित, स्त्री-पुरुष, ऊंच-नीच का कोई भेद नहीं। मुसलमान लोगों की पारस्परिक बैठकों, व्यापारी संस्थाओं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिक्षण-संस्थाओं, मसजिदों, पूजा-स्थानों में सर्वत्र इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

इसलाम जाति-पाँति की, सम्प्रदाय की गुटबंदी के विरुद्ध है। कुरान का कथन है, "खुदा (ईश्वर) की नज़र में वही सबसे अच्छा है जो खुदा और खुदा के बन्दों (मनुष्यों) की सेवा में सबसे आगे है।" कुरान की इस शिक्षा को एक कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है:—

'बनी आदम आज़ाए यक दीगरन्द।
कि अज़ आफरीनश ज़-यक जौहरंद॥

अर्थात् सब इन्सान परस्परावलम्बी हैं क्योंकि सब अनादि काल से एक ही तत्त्व से पैदा हुए हैं।

हज़रत मुहम्मद अपने आपको सैयद अथवा सरदार कहलाने के सख्त खिलाफ़ थे। उन्होंने अपनी प्यारी लड़की फातिमा से एक बार कहा था कि तुम इस बात का भरोसा मत रखो कि तुम खुदा के रसूल (संदेश-वाहक) की बेटी हो।"

इसलाम की निगाह में मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं। सभी मनुष्य एक समान हैं और उनका एक ही परिवार है। समाज को एकरस बनाने का इससे उत्तम विचार क्या हो सकता है? हज़रत मुहम्मद का आदेश है कि सब मनुष्य खुदा (ईश्वर) के बच्चे हैं और उनका एक परिवार है। जो उस परिवार की सेवा करता है वही सर्वोत्तम है।

पवित्र जीवन अथवा शुभ कर्म इसमें नहीं कि इन्सान पूर्व और पश्चिम की ओर मुँह करता है, बल्कि जीवन की पवित्रता इसमें है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से कितना प्यार करता है, निर्धन और असहाय लोगों की कितनी सहायता करता है, गुलामों के बन्धन काटने में कितना त्याग करता है, घायलों और रोगियों की सेवा में कौन आगे बढ़ता है। यह है कुरान और इसलाम की ऊँची शिक्षा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरब देश में दास-प्रथा आम थी। स्वामी अपने दासों के साथ अत्यन्त दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते थे। उन्हें घृणा और हीनता की दृष्टि से देखा जाता था। कोई अरब-निवासी किसी दासी से विवाह नहीं कर सकता था। परन्तु उसे रखेल के रूप में रख सकता था। हजरत मुहम्मद ने इस कुप्रथा के विरुद्ध जोरदार आवाज उठायी। कुरान में एक स्थान पर आता है: "आपका विवेक और सत्य मार्ग यह है कि आप अपने गुलामों को मुक्त कर दें।" आज कल संविधान द्वारा बहुत से देशों में दास-प्रथा बन्द कर दी गयी है। मगर यह कुप्रथा किसी न किसी रूप में आज भी देखने में आती है। ग़रीबों और श्रमिकों का शोषण और उनके साथ अमानवीय व्यवहार इस क्रूरता का एक सामान्य उदाहरण है। अफरीका का रंगभेद और अमेरिका के नीग्रो जाति के प्रति विशेष व्यवहाररूपी सजीव उदाहरण आज भी देखने को मिलते हैं। अफ़रीका में रंग-भेद के कारण काले रंग के मनुष्यों के प्रति और अमेरिका में नीग्रो जाति के प्रति समाज में हीनता का व्यवहार किया जाता है। भंगी और चपड़ासी आदि का, निम्न कोटि का समझा जानेवाला काम ही इनको दिया जाता है। गोरी जाति के लोगों के साथ एक ही बस्ती में वे घर नहीं बना सकते। जमीन नहीं खरीद सकते, जलपान, भोजन आदि में भाग नहीं ले सकते, ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करके भी वे मतदान के अधिकारी नहीं बन सकते। विधान-सभाओं के चुनाव में भाग नहीं ले सकते। अमेरिका में एक ऐसा विधान है जिसके द्वारा नीग्रो जाति के किसी भी व्यक्ति को स्वेच्छा से मृत्यु-दण्ड दिया जा सकता है।

अरब में एक आम प्रथा थी कि कन्या के जन्म पर उसे जीवित ही गाड़ दिया जाता था। स्त्री को पुरुष की अपेक्षा हीन समझा जाता था। स्त्री का जीवन उसके लिए बोझ बन जाता था। स्त्री को दुर्भाग्य का चिन्ह समझा जाता था। लेकिन हज़रत मुहम्मद ने कहा कि स्त्री और पुरुष समाज में समान स्तर के सहयोगी हैं और उनके अधिकार एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समान हैं। स्त्री की पवित्रता के प्रति उनके हृदय में बड़ा सम्मान था। इसलाम ने न केवल स्त्रियों को पुरुषों के समान सामाजिक अधिकार दिलाये, वल्कि सब प्रकार के विधायक अधिकार भी दिलाये। इसलाम एक मात्र पहला धर्म है जिसने स्त्री को भाई और पति के साथ पैतृक सम्पत्ति में समान रूप से भागीदार बनाया। वह अपनी सम्पत्ति का स्वेच्छापूर्वक उपयोग कर सकती है। विवाह के पश्चात् भी वह पिता की सम्पत्ति के अधिकार से वंचित नहीं समझी जाती। इसलाम में लड़की को अपना जीवन-साथी चुनने का उतना ही अधिकार है जितना कि लड़के को। इसलाम स्त्रियों के परदा के विरुद्ध है। परन्तु इसलाम को आधुनिक ढंग की स्त्रियों की अर्धनग्नता भी पसन्द नहीं है। आरम्भ में स्त्रियाँ बुरक़ा (एक विशेष वस्त्र, जिससे समस्त शरीर को छिपा लिया जाता है) नहीं पहनती थीं।

इसलाम में किसी धर्म को हीन नहीं समझा जाता। इसलाम में शरीरश्रम, मजदूरी और शुभ कमाई को अच्छा माना जाता है। हजरत मुहम्मद का आदेश था कि पसीना वहाकर खाना खुदा की रहमत (प्रभु-कृपा) निकट लाना है। इतिहास साक्षी है कि हज़रत मुहम्मद शरीरश्रम के किसी कार्य को भी हीन नहीं मानते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में सफाई, कपड़ों को पैवन्द लगाना, दूध दोहना, जंगल से लकड़ियाँ काटकर लाना आदि सब प्रकार के कार्य स्वयं अपने हाथ से किये। एक वार हज़रत मुहम्मद साहिब के पास कुछ अतिथि आये और उन्होंने नबी की मसजिद को अपवित्र कर दिया। हज़रत मुहम्मद के अनुयायियों ने उसे स्वच्छ कर देने का विचार प्रकट किया, परन्तु हजरत मुहम्मद ने स्वयं अपने हाथों से साफ किया।

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में इसलामी रिवाज के अध्ययन से पता चलता है कि इसलाम समाजवाद के अधिक समीप है। ज़कात (खैरात के लिए अपनी आय का चालीसवाँ भाग निकालना), वेतउल-माल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(सामाजिक सम्पत्ति) आदि का इसलामी विधान सामाजिक समता का सजीव प्रमाण है।

इसलाम विश्वशान्ति का वरिष्ठ समर्थक है। इसलाम का शाब्दिक अर्थ है शान्ति। इसलाम व्यक्तियों में, सम्प्रदायों में शान्ति चाहता है। इसलाम समस्त संसार को मैत्री की दृष्टि से देखना सिखाता है। कुरान की शिक्षा है, "शान्ति में ही सबका भला है। परस्पर शान्ति-पूर्वक रहो।" इसलाम निःसंदेह अहिंसा का समर्थक है। हिंसा का प्रयोग केवल सुरक्षा की दृष्टि से किया जा सकता है। इसलाम बलिदान की शिक्षा देता है। कुरान में अनेक स्थानों पर समाज की भलाई के लिए अपने तन, धन के बलिदान का वर्णन आता है। जब तक आप अपनी सबसे प्यारी वस्तु का परित्याग नहीं करेंगे तब तक आप दूसरों का भला नहीं कर सकते। इसलामी आदर्श के अनुसार मनुष्य का जीवन और उसकी सम्पत्ति सब खुदा (ईश्वर) की है। समाज की भलाई करना मनुष्य का पवित्र कर्तव्य है।

इसलाम को दीनेफितरत (ईश्वरीय धर्म) के नाम से भी पुकारा जाता है। महात्मा गान्धी, विश्वकवि टैगोर, वाशिंगटन, इरविंग और स्मिथ जैसे महान् दार्शनिकों ने इसकी विशेषताओं की प्रशंसा की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूफी मत

हम जिसे सूफी मत कहते हैं, उसका दूसरा नाम 'तसव्वुफ' है। उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। सूफी मत कोई विशेष धार्मिक सम्प्रदाय नहीं है, न उसका कोई संगठन है। वह पूजा-पाठ के किसी विशेष नियम से बँधा हुआ नहीं है। आरम्भ में सूफियों की कोई जमात नहीं थी और वे व्यक्तिगत रूप में साधना किया करते थे। बाद में इनके सिद्धांत, मत और प्रकार तय हुए। खलीफा हारु अल रशीद के समय (सन् ८१५) मारूफ अल करखी एक औलिया हुए हैं। उन्होंने कहा है—"प्रभु की खोज करना, सत्य की आराधना करना और भौतिक भोग-विलास का त्याग करना ही तसव्वुफ है।" यही स्वतन्त्र और सबसे पुरानी व्याख्या है। इब्न अल हुसैन का कहना है कि सूफी संसार से घृणा और प्रभु से प्रेम करता है। सूफी का जीवन अपने लिए न होकर खुदा और खुदा के बन्दों के लिए होता है। एक मिश्री सूफी जून नून ने कहा है कि सूफी वह है जिसकी कथनी और करनी में तालमेल हो, जो पाप से दूर रहता हो और संत-वृत्ति से जीवन व्यतीत करता हो। 'प्रभु से प्रेम करना और प्रभु के आदेश पर आचरण करना, सूफी मत में केवल इसी बात पर जोर दिया जाता है। 'बका' अर्थात् प्रभु-भक्ति करना और मानव-मात्र की सेवा करके कयामत के दिन 'जज़ा' यानी प्रभु का प्रसाद प्राप्त करना, 'फ़ना' अर्थात् बुराइयों को दूर करके पाक रूह (पवित्र आत्मा) का खुदा के साथ हम शक्ल (एक रूप) हो जाना, परमात्मा के गुणों को अपने जीवन के आचरण में लाना यही 'तसव्वुफ' है।

सत्य ज्ञान प्राप्त करना ही तसव्वुफ है। इसलाम में परमात्मा और मनुष्य के बीच कोई कड़ी नहीं है। परन्तु मनुष्य को एकाग्रता के लिए बीच की कड़ी की जरूरत रहती है। ईसाई-धर्म में खुदा के बेटे ईसा को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और इसलाम-धर्म में खुदा के पैगम्बर हजरत मुहम्मद को बीच की कड़ी के तौर पर मान लिया गया है। परमात्मा और मनुष्य का सम्बन्ध चाहे कितना ही गहरा क्यों न हो, बीच की कड़ी के बिना काम नहीं चलता।

'तसव्वुफ' का अर्थ है मिलकर भक्ति करना, आध्यात्मिक समानता लाना व दान देना, सहयोगी समाज की नींव डालना। 'तसव्वुफ' प्रभु-दर्शन की पूर्व-तैयारी का दूसरा नाम है। यह सब काम मिलकर करने से हो सकता है, ऐसा सूफी मत का विचार है। सूफी मत का मानना है कि प्रभु-दर्शन (योग साधना) आध्यात्मिक विधि से ही प्राप्त हो सकता है सूफी मत इसलाम के गहरे दर्शन यानी बुनियादी सिद्धान्तों को फैलाने के लिए जगत में आया। उसका विश्वास और आचरण कट्टरपंथी नहीं है। जहाँ इसलाम बाह्य पूजा तथा रीति-रिवाजों पर जोर देता है, वहां सूफी मत त्याग और हृदय की शुद्धि पर बल देता है। एक सूफी संत ने कहा है :

तरीकत बजुज खिदमते खलक नेस्त
व तसबीह-ओ सज्जादा-ओ दल्क नेस्त

अर्थात् प्रभु-दर्शन का उपाय समाज-सेवा के सिवाय दूसरा कोई नहीं। अल्लाह, अल्लाह जपने की माला, वह कपड़ा जिस पर नमाज पढ़ी जाय या सन्तों की गुदड़ी, इनमें से किसी में ईमान नहीं है। एक और सूफी ने कहा है :

दिल बदस्त आवर कि हज्जे अकबर अस्त
अज हजारां काबा यकदिल बेहतर अस्त

यानी दूसरे के दिल को हाथ में लें। यही सबसे बड़ी हज है। एक दिल हजारों काबों से बढ़ कर है। एक और सूफी ने कहा है :

गर हमीं दानीकि दर हर दिल खुदा अस्त
पस तुरा ताजीम हर दिल मुद्आ अस्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् जब तू जानता है कि हर दिल में खुदा मौजूद है, तो प्रत्येक मनुष्य का आदर करना तेरा फर्ज़ है। सूफी पूजा और रीति-रिवाज पर इतना ज़ोर नहीं देते, जितना आध्यात्म और दर्शन पर देते हैं। वह कुरान और हज़रत मुहम्मद की शिक्षा की गहराई में उतर कर विचार समझाते हैं। इस प्रकार सत्य की खोज करनेवालों यानी खुदा के दरबार तक पहुंचे हुए सूफी सन्तों को 'आरिफ़' कहा जाता है। 'आरिफ़' यानी जिसको प्रभु-दर्शन हो चुका है। सूफ़ी मत प्रभु-सत्ता को आध्यात्म से जोड़ देता है। वह मानता है कि खुदा एक है। वह सर्व-शक्तिमान् हैं। यह जगत उसी का वसाया हुआ है। सब जगह वही प्रकाशमान हैं। सूफी मत मनुष्य में प्रभु का प्रकाश देखता है ;

आदम को खुदा मत कहो आदम खुदा नहीं
लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं

सूफी मत के कुछ ज्ञानी आरिफ़ हुए हैं जिन्होंने यूनानियों के दर्शन और हिन्दुओं के वेदान्त को फिर से जीवनदान दिया और संसार के कोने-कोने में फैलाया। सूफी मत के कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के नजदीक आये। अमीर खुसरो ने कहा है ;

काफिरे इशकम मुसलमानी मरा बरकार नेस्त
हर रगे मन तार गश्ता हाजते जुनार नेस्त

मैं प्रेम-दिवाना हूं, काफिर हूं। मुसलमानी मैं नहीं चाहता। मेरी रग-रग तार बन चुकी है। मुझे यज्ञोपवीत की आवश्यकता नहीं। हिन्दू-संस्कृति का यह कितना ऊँचा आदर्श है !

अज़ सरे वालीने मन बरखेज ऐ नादां तबीब
दर्द मन्दे इश्क रा दारू बजज दीदार नेस्त

ऐ नादान तबीब ! मेरे सरहाने से उठ जा। प्रेम के रोगी की दवा प्रभु-दर्शन के सिवा और कुछ नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत दुःख की बात है कि सूफी मत का, उच्च कोटि का साहित्य बहुधा अरबी या फारसी भाषा में ही मिलता है। यदि अंग्रेजी, हिन्दी उर्दू और दूसरी भाषाओं में अनुवाद कराये जा सकें तो बहुत बड़ा लाभ होगा।

नौवीं शताब्दी में प्रसिद्ध सूफी हलाज ने 'अनल हक' का मन्त्र दिया था जिसका अर्थ है—मैं खुदा हूं, मैं सत्य हूं। हिन्दू धर्म के 'तत् त्वं असि' का भी यही अर्थ है। इसलाम के नियम के अनुसार यह कहना बहुत बड़ा पाप था और इसकी सजा मौत थी। हलाज को मृत्यु-दण्ड दिया गया। उनकी अन्तिम प्रार्थना थी—'ऐ खुदावन्द करीम ! मुझे मृत्यु-दण्ड देनेवालों को क्षमा करना। वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे है।' उनके बलिदान से उनको औलिया का पद प्राप्त हुआ। उनके विरोधी भी उनके बलिदान के पश्चात् उनके अनुयायी बन गये। उनके बलिदान ने यह साबित कर दिया कि आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत मनुष्य 'अनल हक' (मैं ही सत्य हूं, मैं ही खुदा हूं) कहने का अधिकार रखता है। हजरत बू अली शाह क़लन्दर मस्ताना अन्दाज में कहा करते थे—'हैदरम, कलन्द्रम, मस्तम।'

बारहवीं शताब्दी में 'अल गजाली' ने सत्य-निष्ठा और विवेक से काम लेकर सूफी मत का खूब प्रचार किया। ग़ज़ाली की कथनी और करनी एक थी। इसी शताब्दी में एक और सूफी औलिया 'हवन अरबी' हुए। उन्हें ने तेहरवीं शताब्दी में दरवेश नाम का एक संगठन खड़ा किया जिसका उद्देश्य था भोग-विलास में फँसे लोगों को उससे हटा कर त्यागपूर्ण जीवन से लोक सेवा-कार्यों में लगाना तथा सत्य-निष्ठ बनाना। उन्होंने एक महान् सूफी ग्रन्थ 'मसनवी' की रचना की। यदि इसलाम ने बारहवीं और तेहरवीं शताब्दी में ईरान में इस प्रकार ऊँचा आध्यात्मिक दृष्टिकोण न अपनाया होता, तो उसके लिए भारत जैसे देश को आर्थिक और सैनिक विचार के प्रभाव में लाना असंभव हो जाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूफियों की पोशाक

सूफी शब्द अरबी के सूफ शब्द से, बना है जिसका अर्थ है ऊन अर्थात् ऊनी चोग़ा पहननेवाला । यह रिवाज धीरे-धीरे कम होता गया । इसके दो कारण हैं । एक यह कि ईसाई-धर्म के सन्त भी इस प्रकार के वस्त्र पहनते थे और सूफी इसे उनकी नकल मानने लगे। दूसरे यह कि एक समय भेड़ें कम हो गयीं और ऊन मिलना बन्द हो गया । बाद में 'मुरक्का' अर्थात् जोड़ लगी हुई गुदड़ी सूफियों की एक विशेष पहचान बन गयी । गुदड़ी को देख कर लोगों को मालूम होता था कि यह मनुष्य प्रभु-मार्ग पर चलनेवाला एक 'आबिद' है। एक ऐसा समय भी आया कि आबिद लोग 'अब्बा' अर्थात् ऊनी चोगा और गुदड़ी को साधना में रुकावट मानने लगे और उन्होंने दोनों को छोड़ दिया तथा आम लोगों की तरह सादा पोशाक पहनने लगे । ऐसे लोगों का कहना है कि पोशाक दिखावे के लिए नहीं होनी चाहिए । पवित्र जीवन प्रभु का प्रसाद है । केवल चोगा या गुदड़ी पहन लेने से जीवन की पवित्रता प्राप्त नहीं होती ।

अमल से जिन्दगी बनती है जन्नत भी जहन्नुम भी
यह खाकी अपनी फितरत में न नूरी है न नारी है

सूफी ज्ञान के साथ आचरण पर बहुत जोर देते हैं। कुरान में कहा गया है कि कोरा इल्म पुस्तकों का बोझ पीठ पर लाद कर चलने वाले गधे के बराबर है।

नमाज़

इसलाम में ५ बार नमाज़ पढ़ने का चलन है। परन्तु सूफी इसे जरूरी नहीं मानते । जो दिन-रात प्रभु का स्मरण करते हैं, उनके लिए पाँच समय रह ही कहाँ जाते हैं ? सूफी मानते हैं कि प्रभु-स्मरण यानी नमाज़ से ज्ञान तथा कर्मेंद्रियाँ शुद्ध और पवित्र होती हैं तथा प्रभु-दर्शन होता है। प्रभु-भक्ति में रस रखनेवाले को 'मस्त कलन्दर' के नाम से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी पुकारा जाता है। अब्बुल खैर नाम के एक मस्त कलन्दर के बारे में कहा जाता है कि एक बार वह नाम-स्मरण में मस्त था, तो चिकित्सिक ने उसके पाँव को काटा और उसे उसका भान तक नहीं हुआ। वास्तव में आबिद और जाहिद की नमाज साधारण मनुष्य की नमाज़ से अलग होती है। आबिद कर्त्तव्य मानकर 'सलात' अर्थात् प्रार्थना करता है। वह तोते की तरह प्रार्थना नहीं करता। वह 'मुनाजात' प्रेम और प्रार्थना की भाषा को खूब समझता है।

अपनी ज़रूरतें कम करो

सूफी सन्तों ने जीवन की आवश्यकताएं कम से कम रखने का आदेश दिया। उनके विचार में स्वैच्छित गरीबी के जीवन में अहंकार नहीं रहता। अहंकार न रखने पर साधना सफल होती है। सूफी सन्तों ने भौतिक त्याग तथा शारीरिक संयम का बहुत ऊंचा आदर्श हमारे सामने रखा है। इसके कारण ही सूफीमत प्रगति कर सका। इसलाम धर्म में हजरत मुहम्मद के बाद पहले तीन खलीफों ने भौतिक सुखों और भोग-विलास का त्याग किया। सत्य, प्रेम, करुणा के जीवन का एक सुन्दर उदाहरण पेश किया। अबुवकर, उमर और अली का जीवन अत्यन्त सादा था। उनका प्रतिदिन का खर्च सीमित था। शरीर-श्रम में उनकी पूरी निष्ठा थी। वह अपने निज के सारे काम स्वयं किया करते थे। हज़रत मुहम्मद की तरह अपने काम हाथ से करके जीवन व्यतीत किया करते थे।

त्याग का आदर्श

पहले जो प्रभु मनुष्य की पहुंच से बाहर था, अव्यक्त था, वह अब 'अनल हक' से व्यक्त होने लगा। आरम्भ में सूफी मत ने त्याग का एक आदर्श दुनियाँ के सामने रखा। सत्य की खोज के लिए सूफी सब कुछ छोड़ने को तैयार हो जाते थे। तप और त्याग की भावना सूफियों के कारण ही मुसलमानों में प्रसिद्ध हो सकी। तप और त्याग के इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आन्दोलन को मुसलमान शासकों से काफी प्रोत्साहन मिला। करुणा, मीठापन और नम्रता सूफियों के खास गुण थे। 'खुदा की रजा'— उनका प्रसिद्ध वाक्य था। 'रज़ा' अर्थात् जो कुछ है उसी में जीवन-निर्वाह चलाना। किसी के धन की वासना न रखना। स्वेच्छापूर्वक गरीबी का जीवन व्यतीत करना।

हृदय की उदारता

सूफियों के मानव-सेवा और हृदय की उदारता के प्रभावशाली आन्दोलनों ने सब को मोह लिया। यह सही है कि सूफी मत इसलाम की ही एक शाखा है, परन्तु सूफियों के हृदय की उदारता और प्रेम की धूम चारों ओर फैल गयी। हर जगह लाखों की संख्या में मुसलिम और गैर मुसलिम उत्साहपूर्वक इस नये आध्यात्मिक टोले में शामिल होने लगे। वास्तव में उनके सादा जीवन, पाप से घृणा, एक प्रभु की पूजा, दूसरों को दुःख न देकर स्वयं दुःख झेलना, समाज-सेवा के काम उठाना, ये ऐसे गुण थे जो उनके विरोधियों को भी उनकी ओर खींच लाते थे। लोग उनकी ओर खिचे-खिचे आते थे। सूफी पूजा और उपासना के बँधे रीति-रिवाजों को ज़रूरी नहीं मानते थे। आरम्भ में इस कारण सूफियों को कड़े दण्ड दिये गये, परन्तु इसका परिणाम अच्छा हुआ और सूफी मत के सिद्धान्तों का प्रचार अधिक-से-अधिक होने लगा। 'इब्न अल फरीद', 'इब्न अरबी', और 'रूमी' जैसे सूफी औलियाओं ने सूफी मत के प्रचार में बड़ी सहायता की। उन्होंने अपने प्रचार में उदारता और व्यापक प्रेम का ऊँचा आदर्श पेश किया।

सूफीमत के सिद्धान्त

खुदा एक है। वह सर्वनियन्ता और सर्वद्रष्टा है। सब जगह उसी का प्रकाश है। वह सर्वशक्तिमान है। सारा ब्रह्माण्ड उसी में समाया हुआ है। वह अलिप्त है, सर्वज्ञ है, असीम है। वह दिखाई नहीं देता, परन्तु वह सबको देखता है। हम जिसे देखते हैं और जिसे नहीं देख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते, वह सब उसी का बसाया हुआ है। यह सारा जगत् उसी बुनियादी सत्य को व्यक्त कर रहा है। पृथ्वी और आकाश सब उसी की रचना है।

वह सबसे बड़ा दयालु है। वह प्रकाश का स्रोत है। सारा संसार उसी के प्रकाश से प्रकाशमान हो रहा है। 'जामी' ने कहा है—"तुम्हारी ताकत लाज़िवाल है। तुम ही कारसाज़ हो। कुल दुनियाँ तुम्हारे नूर से जगमगा रही है।' सूफी मत के अनुसार खुदा के अलावा और किसी की हस्ती नहीं।

खुदा के सिवा जो कुछ है वह अशाश्वत है, भ्रम है, असत्य है। उसे सत्य मान लेना ही दुःख का कारण है। सूफी मत में प्रभु-दर्शन के तीन उपाय बताये गये हैं—(१) वहदत में विश्वास (२) उपासना में विश्वास (३) गुण-विकास में विश्वास। 'अल वजूद अल मुतलक' अर्थात् जिसका कोई सम्बन्ध न हो, इस हालत में मनुष्य निर्मोह दशा को प्राप्त होता है। 'वहदत' यानी उसकी ज़ात से अलग न होना। उसकी जानकारी करानेवाला ज्ञान। 'वहदीयत' यानी उसकी ज़ात में मिल जाना। 'क़ामिल इन्सान' यानी वह मनुष्य जिसमें प्रभु के सारे गुण समाये हुए हों। विनाश को प्राप्त होनेवाले इस संसार में जिस मनुष्य में ये दैवी गुण आ जाते हैं, वह पूर्ण मनुष्य कहलाता है। सूफियों के मत के अनुसार हज़रत मुहम्मद पूर्ण मनुष्य हुए हैं।

सूफियों का कहना है कि प्रभु के ज्ञान के पूर्व अपना ज्ञान जरूरी है। सूफी नफ़्स और रूह में भेद करते हैं। नफ़्स अर्थात् भौतिक शरीर। रूह अर्थात् सूक्ष्म आत्मा। नफ़्स भौतिक सीमा तक रहता है। रूह आध्यात्मिक क्षेत्र तक रहती है। नफ़्स को पाक (पवित्र) रखने के लिए नीचे लिखे क्रम को ध्यान में रखना चाहिए:

'नफ़्स अमारा' यानी पाप करनेवाला,
'नफ़्स अव्वामा' यानी पाप-मार्ग पर डालनेवाला,
'नफ़्स मुलहम' यानी दूसरों के भरोसे पर रहनेवाला,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'नफ़स रजा' यानी प्रभु-इच्छा पर सन्तुष्ट रहनेवाला,
'नफ़स मरजिया' यानी सन्तोषी मनुष्य,
'नफ़स माफ़ीहा' यानी पूर्ण मनुष्य।

सूफियों का अन्तिम लक्ष्य प्रभु-मिलन है। 'अनल हक' अर्थात् हिन्दू धर्म के अनुसार 'तत् त्वम् असि'। मनुष्य को यहाँ तक पहुँचना है। सूफियों की इस अवस्था का वर्णन करना असंभव है। सब के लिए यह सम्भव भी नहीं है। यह तो एक आदर्श ही है। 'अनल हक' अर्थात् मैं वही हूं।' 'वज्द' अर्थात् प्रभु-स्मरण की मस्ती आत्मा और परमात्मा के के मेल का एक साधन है। परन्तु जिसने उसे जान लिया है वह उसे व्यक्त नहीं कर सकता। 'इब्न अल फरीद' ने 'वज्द' के तीन रूप बताये है। प्राकृतिक, अप्राकृतिक और विशेष प्राकृतिक। आम लोग पहली अवस्था तक रहते हैं। कुछ लोग जो कई प्रकार की चिन्ताओं से घिरे रहते हैं, वे दूसरी अवस्था के माने जाते हैं। जिनका 'वज्द' पर कावू हो जाता है, वे तीसरी प्रकार के, पूर्ण माने जाते हैं।

सूफी मत में यह भी माना जाता है कि जब मनुष्य भौतिक वातावरण से ऊपर उठकर आध्यात्मिक वातावरण में पहुँचता है और जब वह अनासक्त और पुण्यवान हो जाता है, तब उसे प्रभु-दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। यह 'फनाह' का मुकाम है। 'फनाह' का अर्थ है— भौतिक जीवन तथा भोग-विलास का त्याग करके भौतिक वातावरण से ऊपर उठना, प्रभु के गुणों को अपने जीवन में लाना, सभी मानसिक हलचलों का शान्त हो जाना, जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचना तथा मृत्यु का आभास होना। जो मनुष्य इस स्थिति तक पहुंच जाता है उसे 'फ़ानी' कहते हैं।

फ़ानी तीन प्रकार के होते हैं। छिपी शक्ति के चमत्कार में विश्वास रखनेवाले, धर्म-विशेषज्ञ जो खुदा के बन्दों से खुदा की पहचान कराते हैं, परन्तु खुदा को खोज नहीं पाते। वे लोग जानते हैं कि वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खुदा को जान नहीं सकते और यही खुदा की पहचान है। 'आरिफ़' यानी 'वज्द' के द्वारा प्रभु-दर्शन पानेवाले। प्रभु-भक्ति वास्तव में प्रज्ञा का सौदा है। आरिफ़ दीन और मजहब से ऊँचा रहता है। तौबा उसकी पहली मन्जिल है, गरीबी दूसरी, और तव्वकल (भरोसा) तीसरी। तौबा में मनुष्य त्याग-वृत्ति को अपनाता है; गरीबी का जीवन व्यतीत करता है; और तव्वकल अर्थात् केवल एक भगवान् का ही भरोसा रख कर काम करता है।

सूफी ऐसा मानते हैं कि 'मारफत' (ईश्वरी ज्ञान) कामिल मुरशिद (पूर्ण गुरु) के बिना प्राप्त नहीं होता। प्रभु-दर्शन और आध्यात्मिक मार्ग पर बढ़ने के लिए पग-पग पर गुरु की जरूरत रहती है।

'जिक्र' यानी खुदा की याद में मस्त रहना। कुरान की कुछ आयतों में जिक्र की पहली अवस्था 'मराकबा' में इस प्रकार ध्यान करना आवश्यक माना गया :

'अल्लाह हू हाजिरी' अर्थात् खुदा हर जगह मौजूद है।
'अल्लाह हू नाजिरी' अर्थात् खुदा मुझे देखता है।
'अल्लाह हू शाहदी' अर्थात् खुदा मेरा गवाह है।
'अल्लाह हू माई' अर्थात् खुदा मेरे साथ है।

सूफी औलिया

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में जिन सूफ़ी औलियाओं के मजारों पर प्रति वर्ष मेले लगा करते हैं, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :—

१. शेख फरीदुद्दीन, पाक पटन, जिला मन्टगुमरी, पाकिस्तान।

२. मुहम्मद आरिफ शाह, लाहौर।

३. बुल्ले शाह, लाहौर।

४. शाह जमाल, लाहौर।

५. शाह दौला दरयाई, गुजरात, पाकिस्तान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. शेख जलालउद्दीन मखदूमे जहाँ, झंग, पाकिस्तान ।

७. शेख बहाउद्दीन, मुलतान, पाकिस्तान ।

८. ख्वाजा शमसुद्दीन, पानीपत, करनाल, भारत ।

९. जलाल-उल-दीन कबीर-उल-औलिया, पानीपत ।

१०. बू अलीशाह कलन्दर, पानीपत ।

११. शाह लखी, अम्बाला ।

१२. अमीर खुसरो, देहली ।

१३. शाह नसीरुद्दीन, देहली ।

१४. ख्वाजा निजामुद्दीन, देहली ।

१५. शमस तबरेज, देहली ।

१६. ख्वाजा मुअयुद्दीन चिश्ती, अजमेर शरीफ़ ।

१७. बाबा दाऊद खाकी, कश्मीर ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महा-मानव सन्त कबीर

सन्त कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों के पूज्य हैं। जब सन्त कबीर की मृत्यु हुई तो उनके हिन्दू और मुसलमान अनुयायी आपस में झगड़ने लगे। मुसलमान उन्हें अपने अकीदे के मुताबिक दफ़न करना चाहते थे; हिन्दू अपनी परम्परा के अनुसार उनका दाहकर्म संस्कार करना चाहते थे। सन्त कबीर के एक ज्ञानवान अनुयायी ने दोनों को समझाने का प्रयत्न किया कि "इस समय आपस में झगड़ना योग्य गुरु के ऊँचे आदर्शों की अवहेलना करना है। आओ हम सब मिलकर अपने गुरु को अन्तिम नमस्कार करें।" कहा जाता है कि मृतक शरीर पर से जब सफेद चादर हटायी गयी, तो वहाँ फूलों के ढेर के सिवा और कुछ नहीं था। दर्शक यह चमत्कार देखकर हैरान रह गये। उन्होंने आपस में फूल बाँट लिये और इस प्रकार झगड़ा ख़त्म हो गया।

कबीर का जन्म सन् १३९८ में हुआ। कबीर की माँ विधवा थी। जब कबीर का जन्म हुआ तो उसने लज्जा के कारण बालक का परित्याग कर दिया। एक मुसलमान बुनकर नीरू और उसकी पत्नी नीमा ने, जो बनारस के पास रहते थे, नवजात बालक को देखा और उसे घर ले आये। कबीर का पालन-पोषण इस बुनकर परिवार में हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि उनका जन्म इसी परिवार में हुआ था। सत्य क्या है, यह कहना कठिन है। इतना ज़रूर है कि कबीर इस परिवार में पल कर बड़े हुए और उन्होंने बुनकर का धन्धा ही अपनाया।

उन दिनों बनारस नगर में एक प्रसिद्ध सन्त रामानन्द रहा करते थे। उनका अनुयायी सवर्ण हिन्दू ही हो सकता था। कबीर मुसलमान थे। उन्हें भय था कि रामानन्द उन्हें नहीं अपनायेंगे। रामानन्द प्रतिदिन गंगा-स्नान के लिए प्रातः समय मुँह अंधेरे जाया करते थे। एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिन कबीर गंगा-तट की एक पौड़ी पर लेट गये। रामानन्द जब स्नान करके लौटे तो अंधेरे में उनको दिखाई नहीं दिया और उनका पाँव कबीर पर पड़ा। रामानन्द के मुंह से अनायास निकल पड़ा—"हे राम ! क्या किसी प्राणी को चोट लगी है ?" कबीर उठ खड़े हुए और रामानन्द को दण्डवत नमस्कार किया और घर चले आये। कबीर को विश्वास हो गया कि रामानन्द ने उनको 'राम-नाम' का मन्त्र दिया है और उनके चरणों की पवित्र धूल भी उनको प्राप्त हो गयी है।

"काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये।"

कबीर जी के मुसलमान अनुयायी मानते हैं कि उन्होंने सूफ़ी सन्त 'शेख तकी' से गुरु-दीक्षा ली थी। वे इस बात के प्रमाण में यह वाक्य पेश करते हैं कि **"घट-घट अविनासी सुनहु तकी तुम शेख।"**

गुरु-दीक्षा पाकर कबीर ने राम नाम का जाप शुरू किया। उनका प्रिय बोल था—**"जाति पाँति पूछे न कोय, हरि को भजे सो हरि का होय।"** कबीर आयु-पर्यन्त गृहस्थ ही रहे। उन्होंने अपना बुनकर का धन्धा भी नहीं छोड़ा। बुनाई के कमाल के साथ आध्यात्मिक कमाल भी प्राप्त किया।

कबीर अपनी आजीविका कपड़ा बुनकर चलाते थे। उनका हृदय लोक-कल्याण की भावना से सदा प्रसन्न रहता था। दया और दान की वृत्ति से उन्होंने बहुत लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। एक बार वह एक थान बुन कर बाज़ार में बेचने के लिए निकले। रास्ते में एक फ़कीर मिला। उसने कबीर से कहा—"बाबा, कुछ भगवान् के नाम पर दो।" कबीर ने उसे आधा थान फाड़कर दे दिया। फ़कीर ने कहा—"बाबा, इससे मेरा काम नहीं चलेगा, कुछ और दे दो।" कबीर ने बाकी आधा थान भी दे दिया और खाली हाथ घर लौट आये।

कबीर का आध्यात्मिक विकास उनकी सच्ची शरणता, समर्पणता, और हरिमयता का एक अद्‌भुत प्रमाण है। कबीर निर्गुण भक्ति के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपासक थे। परम्परागत विचारों, कर्म-काण्डों और रीति-रिवाजों में उनका विश्वास न था। वह मानते थे कि कोरा भौतिक ज्ञान सच्चे आत्मज्ञान से दूर ले जाता है। कबीर प्रेम-धर्म के पुजारी थे :—

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पण्डित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होय॥

उनका विश्वास था कि सभी धर्म वास्तव में एक हैं और सब धर्मों का निचोड़ प्रेम-धर्म है। कबीर ने कहा है :

भाई रे दोऊ जगदीश कहां ते आये कहो कौने बौराय।
अल्लाह राम करीमां केशो हरि हज़रत नाम धराय॥
गहना एक कनक ते गहना वा में भाव न दूजा।
कहन सुनन को दोऊ कर थापे इक नमाज़ इक पूजा॥

कबीर साहित्य—भजन, दोहे, साखी—की सारे विश्व में धूम है। विश्व की महान् भाषाओं में उनका अनुवाद हुआ है। मैकालिक, टैगोर, अण्डरहिल जैसे साहित्यकों और विचारकों ने कबीर की कविताओं के अनुवाद अपने प्रसिद्ध ग्रंथों में दिये हैं।

कबीर की प्रेम-भक्ति

घूंघट का पट खोल रे, तोहे पीव मिलेंगे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे।
धन जोबन का गर्व न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारिले, आसन से मत डोल रे॥
कहे 'कबीर' आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥ १॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारे भुई धरे, तब पैठे घर माँहि॥
सीस उतारे भुई धरे, ता पर राखै पाँव।
दास 'कबीरा' यों कहे, ऐसा होय तो आव॥ २॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम न वाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट विकाय।
राजा परजा जेहि रुचैं, सीस देई लै जाय ॥ ३ ॥

प्रेम पियाला भर पिया, राचि रहा गुर ज्ञान।
दिया नगारा सबद का, लाल खड़े मैदान ॥ ४ ॥

प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥ ५ ॥

प्रेम छिपाया न छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोले नहीं, तो नैन देत है रोय ॥ ६ ॥

प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना वैराग्य।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग ॥ ७ ॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान समान।
जैसे खाल लोहार की, सांस लेत बिन प्रान ॥ ८ ॥

कबीर की गुरु-भक्ति

गुरु बिन कौन बतावे बाट ? बड़ा विकट यमघाट ॥ १ ॥

गुरु के बिना शांति-मार्ग कौन बतायेगा ? पाप के महासागर से कौन पार उतारेगा ?

भ्रान्ति की पहाड़ी नदियाँ,
बिचमों अहंकार की लाट ॥ २ ॥

तेज़ बहाववाली पहाड़ी नदी की तरह भ्रान्ति मनुष्य की स्थिरता को बहाकर ले जाती है। अहंकार मार्ग-दर्शक बनता है। अहंकार और भ्रान्ति से मुक्त होने के लिए सिद्ध गुरु की आवश्यकता है।

काम क्रोध दोउ पर्वत ठाढे, लोभ चोर-संघात ॥ ३ ॥

काम, क्रोध और लोभ, चोरी तथा दूसरे पाप पहाड़ बनकर रास्ता रोक कर खड़े हैं। सिद्ध गुरु के बिना यह कैसे सर हो सकता है ?

मद मतसर का मेह बरसत, माया पवन बहे दाट ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहंकार की घनघोर घटा, मूसलाधार वर्षा और बाढ़, माया की झकझोर हवाएँ हमारे तमाम प्रयत्नों को बेकार बना देती हैं। सिद्ध गुरु के बिना इनसे कौन मुक्ति दिला सकता है ?

कहत कबीर सुनो भाई साधो क्यों तरना यह बाट ॥ ५ ॥

कबीर कहता है, सुनो भाई साधो। वही पाप-सागर से तर सकेगा, जिसे सिद्ध गुरु का प्रसाद प्राप्त होगा।

कबीर की प्रभुभक्ति

कबीरा अपने राम को अन्तर लिया लगाय।
रोम-रोम में रम रहा, और अमल क्या खाय ॥ १ ॥
प्रियतम को पतिया लिखूं, जो कहूं होय विदेस।
तन में मन में नैन में ता को कहा सन्देश ॥ २ ॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिके, पिया को लिया रिझाय ॥ ३ ॥
पिया का मार्ग सुगम है, तेरा चलन अबैड़ा।
नाच न जानै बापुरो, कै आंगना टेढ़ा ॥ ४ ॥
शरण आये सो सबहिं उबारे, यही प्रभु की रीत।
कहे कबीर सुनो भाई साधो चलिहौ मोदल जीत ॥ ५ ॥

कबीर की ज्ञान और कर्म-भक्ति

झीनी झीनी बिनी चदरिया ॥ धुन ॥
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया ॥
आठ कँवल दल चरखा डोले, पाँच तत्त गुन तिनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक के बिनी चदरिया ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शेख़ फ़रीद

शेख फ़रीद का पारिवारिक सम्बन्ध हज़रत उमर फारूक़ से है। मौलाना जमालुद्दीन देहलवी लिखते हैं कि शेख फरीद के पिता शेख जमालुद्दीन सुलेमान शहाबुद्दीन गौरी के समय काबुल से लाहौर आये। कुछ समय तक क़सूर और मुलतान रह कर खोतवाल आये और वहीं रहने लगे। शेख फरीद का जन्म यहीं हुआ। उनकी जन्म-तिथि अनिश्चित है। उनकी माता मुलतान के क़ाज़ी वजीहुद्दीन की लड़की करसम खातून थीं, जो अत्यंत कोमल-स्वभाववाली, भक्तिभाव तथा कठिन तपस्या करनेवाली स्त्री थीं। फरीद ने छोटी आयु में कुरान याद कर लिया था। मुलतान में शिक्षा प्राप्त की। ऐसा मालूम होता है कि फरीद की माताजी के भक्ति भाव की उन पर गहरी छाप पड़ी। उनकी माता नमाज, रोजे की पाबन्द थीं। फ़रीद को दरवेश बनने का सौभाग्य अपनी माता से मिला। माता उनको हमेशा फक़ीरी, रियाजत (तपस्या) और 'अनल हक़' की प्रेरणा देती रहीं।

शेख फ़रीद के परिवार का बहुत पुराना सम्बन्ध काबुल के बादशाह फरुखशाह से आता है। काबुल का राज्य ग़जनवी राज्य से पहले आया। जब काबुल की सलतनत का शीराज़ा बिखर गया, तब वह ग़जनवी राज्य में चला गया। जब चंगेज़खां ने ग़ज़नी पर हमला किया और उसे लूटा, तब शेख फ़रीद के पड़दादा काबुल के युद्ध में मारे गये। शेख फ़रीद के दादा क़ाज़ी शुरोब और उनके पिता शेख जमालुद्दीन अपने परिवारसहित लाहौर आ गये।

शेख़ फ़रीद के बड़े बजुर्गों में इब्राहीम बिन आदम बलख के वाली बहुत बड़े फक़ीर हो गुज़रे हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी है कि एक बार एक प्रभु-दूत उनको स्वप्न में दिखाई दिये। उन्होंने उनसे पूछा—'यहां क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने आये हो ?' उत्तर दिया—'प्रभु के प्यारों की सूची तैयार कर रहा हूँ।' पूछा—'क्या मेरा नाम भी उसमें है ?' कहा 'नहीं'। इब्राहीम ने कहा, 'जाओ कल अल्लाह मियाँ से पूछ कर आना कि मैं जो उसकी मखलूक़ की सेवा कर रहा हूँ, मेरा क्या दर्जा है ?' कहा जाता है कि जब दूसरे दिन प्रभु-दूत आया तो इब्राहीम का नाम सूची में सबसे पहला था।

शेख़ फ़रीद का जन्म सन् ११७३ तथा मृत्यु सन् १२६६ में हुई। शेख़ फ़रीद बड़े पहुंचे हुए सूफी सन्त थे। वह भारत में चिश्ती सम्प्रदाय की नींव डालनेवालों में से एक प्रमुख मार्ग-दर्शक माने जाते हैं। फ़रीद का ऐसे रहस्यवादियों की टोली से सम्बन्ध था, जिन्होंने रहस्यवाद को जन-आन्दोलन का रूप दिया। उन्होंने लोगों में नैतिकता और धार्मिक चेतना पैदा करने का बहुत बड़ा काम किया। उनके मुरीद दो प्रकार के थे; एक वह जिन्होंने सर्वस्व त्याग और कठिन तपस्या का जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की और चिश्ती सम्प्रदाय को फैलाने में शेख फरीद का साथ दिया। दूसरे वह जो अपना साधारण जीवन-व्यवहार चलाते हुए चिश्ती सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे और सम्प्रदाय के विकास के लिए ज़काते शरीयत अर्थात् अपनी आय का चौथा भाग भी इस काम के लिए देते थे। पहली प्रकार के अनुयायी ज़काते हक़ीक़ी देनेवाले कहलाते थे, अर्थात् अपने पास कुछ नहीं रखते थे।

शेख फरीद अपने मुरीदों को इस प्रकार की जीवन-शिक्षा दिया करते थे :

(१) आध्यात्मिक प्रगति आत्मा की साधना और अन्त:करण की पवित्रता में ही निहित है। मारफत (आत्मज्ञान) के लिए आवश्यक है कि मनुष्य लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध, द्वेष और घृणा की भावनाओं को मन से निकाल दे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) भौतिक पदार्थों में आसक्ति रखनेवाले आध्यात्मिक विद्या प्राप्त नहीं कर सकते। इससे नैतिक वन्धन कमजोर पड़ जाते हैं और आत्मा की स्वतन्त्रता खत्म हो जाती है।

(३) मानव-मानव सब एक हैं। किसी से वैर-विरोध नहीं होना चाहिए।

(४) जिम्मेदारी को पूरा किया जाय अर्थात् कर्तव्य-पालन किया जाय।

(५) धार्मिक ज्ञान और जीवन-शिक्षा आध्यात्मिकता के दो बुनियादी अंग हैं।

(६) ज़काते हक़ीक़ी और जकाते शरीअत को धार्मिक तथा सामाजिक विकास के लिए जरूरी माना जाय।

(७) आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन के आचरण में लाकर मनुष्य-जीवन को सार्थक बनाया जाय।

शेख फरीद 'खिलाफत' को एक गम्भीर तथा पवित्र कर्तव्य मानते थे। खलीफा वही हो सकता है जिसका आचरण बहुत ऊँचा हो। उन्होंने निजामुद्दीन औलिया को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते समय ये शब्द कहे :

"वारी तआला तुरा इल्म व अक़ल व इश्क़ दादा अस्त,
व हरकि बदीं सेह सिफ़त मौसूफ़ बाशद अज़
ओ खिलाफत मशाऐख नेको आयद।

अर्थ : प्रभु ने तुम्हें ज्ञान, बुद्धि और प्रेमभक्ति की दात दी है। ये तीनों गुण रखनेवाला ही प्रभु के प्रेमियों का खलीफा होने का अधिकारी हो सकता है।

शेख फ़रीद के आध्यात्मिक आन्दोलन की सफलता का कारण उनके दिल व दिमाग की व्यापकता थी। उनकी सूझ-बूझ ने उनको अपने मुरीदों की अन्तर-आत्मा तक पहुँचने में बड़ी मदद की। उन्होंने मुरीदों के नैतिक उत्थान तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास के लिए बड़ा काम किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निज़ामुद्दीन औलिया ने अपने गुरु की प्रशंसा में एक बार कहा था—'मेरे पीर (पवित्रात्मा) शेख फ़रीद हैं। उनके बराबर कोई दूसरा नहीं।'

शेख फरीद की रचना

पंजाबी साहित्य में शेख फरीद का स्थान बहुत ऊँचा है। गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरु साहिबान के अलावा जिन पंजाबी महापुरुषों की वाणी का समावेश हुआ है, उनमें फरीद की रचना सबसे अधिक है। गुरु ग्रन्थ साहिब में फरीद के चार पदों और एक सौ बारह श्लोकों का संग्रह मिलता है। पंजाब में उर्दू के बानी प्रो० महमूद शीरानी के कथनानुसार ख़ाजा मसूद के बाद पंजाब के पहले कवि फ़रीदुद्दीन मसूद (बाबा फरीद) ही पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपने विचार पंजाबी में प्रकट किये।

फरीद दर्शन

(१)

जित दिहाड़े धनवरी साहे लए लिखाए।
मलकूजि कनी सुणीदा मुहु देखा ले आए।
जिन्द निमाणी कढ़िये हडाँकू कड़काए।
साहे लिखे न चलनी जिन्द कूं समझाय।
आपण हथी बोल कै, के गल लगे धाय।

अर्थ : जिस दिन धनवती का ब्याह होना है, वह समय निश्चित हो चुका है। दूल्हा (यमदूत) उस समय हाड़ों को कड़का कर बेचारी प्राण-शक्ति को शरीर से निकालकर ले जायगा। प्राण-शक्ति पत्नी है और मौत पति, जो इसे ब्याह कर ले जायेगा। यह शरीर प्राण-शक्ति को यमदूत के साथ भेजकर किसका सहारा लेगा? फरीद! तुझे चेतावनी मिल रही है कि तू अपने-आपको खड़े खड़े न लुटा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२)

फरीदा दर दरवेसी गाखड़ी चलाँ दुनिया भत्त ।
वन्न उठाई पोटली कित्थै वंजा घत्त ।।

अर्थ : फरीद जी कहते हैं कि प्रभु के दर की फकीरी बड़ी कठिन है । मैं दुनियादारी के ढंग से चलता हूं । मैंने पापों की पोटली बाँधकर उठा ली है, इसे फेंक कर मैं कहाँ जाऊँ ?

(३)

फरीदा जो तें मारन मुक्कियाँ तिनां न मारे घुम्म ।
आपने धर ज़ाइए पैर तिना दे चुम्म ।।

अर्थ : फरीद ! जो तुम्हें मुक्का मारते हैं, उनको मुक्के से जवाब मत दो । आप उनके पाँव को चूमकर अपने घर (प्रभु के घर) जाओ ।

(४)

फरीदा खाक न निन्दिये खाक जेडा न कोई ।
जीवदियाँ पैराँ तलै मुईयाँ ऊपर होई ।।

अर्थ : फरीद ! मिट्टी की निन्दा न करो । उसके बराबर कोई नहीं । जीते जी पाँव के नीचे रहती है, जब मर जाते हैं, तो ऊपर हो जाती है ।

(५)

'फरीदा' गलियै चिक्कड़ दूर घर नाल पियारे नेह ।
चलां त भिज्जे कंबली रहां त टुट्टे नेह ।
भिज्जो सिज्जो कंबली अल्लों बरसे मेह ।
जाय मिलाँ तिनां सजणां टुट्टे नाहीं नेह ।।

अर्थ : गलियों में कीचड़ है । घर दूर है, परन्तु पियारे (प्रभु) से प्रेम है । अगर मैं जाता हूं तो मेरी लोई भीगती है । नहीं जाता तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरा प्रेम टूटता है। यदि प्रभु की ओर से वर्षा होती है और लोई भीगती है तो भीगने दो। मैं अपने प्रीतम को जा मिलूँ। प्रेम की गंगा बहती रहे।

फरीदा सक्कर खंड निवात माखिउ मांझा दुध।
सभे वस्तु मिट्ठियां रब न पूजन तुध॥

अर्थ : शक्कर, खांड, मिश्री, शहद और दूध सब वस्तु मीठी हैं, परन्तु नाम की मिठास उनमें कहाँ ?

(७)

फ़रीदा रोटी मेरी काठ की लावरण मेरी भुख।
जिनाँ खादी चोपड़ी घरगी सहनिगे दुःख॥
रुक्खी सुक्खी खाय के ठण्डा पारगी पिओ।
'फरीदा' देख पराई चोपड़ी न तरसाए जिओ॥

अर्थ : मेरी रोटी लकड़ी की है और मेरी सब्जी भूख है। जो चिकनी रोटी खाते हैं अर्थात् जो दुनियादारी के सुखों में फँसे हैं, वह बहुत दुःख उठाते हैं। जिन्होंने अपने मन को इन्द्रियों के भोग-विलास से हटा लिया है, वह सुखी रहते हैं। फरीद कहते हैं कि अपनी रूखी-सूखी खाकर सन्तोष मानना चाहिए। दूसरों के अच्छे-अच्छे पदार्थ देख कर दिल को तरसाना नहीं चाहिए।

(८)

जोवन जांदे न डरां जे सह प्रीति न जाय।
'फरीदा' किती जोवन प्रीति बिन सुक गये कुमलाय॥

अर्थ : मैं जोबन चले जाने से नहीं डरता, अगर मालिक का प्रेम बना रहे। प्रभु-प्रेम के बिना अनेक जोबन सूख कर कुम्हला जाते हैं।

(९)

'फरीदा' दर दरवाजे जाय के किंउ डिठो घड़ियाल।
एहु निदोसा मारिये हम दोसांदा क्या हाल॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ : जब घड़ियाल को विना कसूर के पीटा जाता है, तो 'फरीद' हमारे जैसे कसूरवारों का क्या हाल ?

(१०)

'फरीदा' कोठे मण्डप माडियां एतन लाय चित्त ।
मिट्टी पई अतोलवीं कोई न होसी मित्त ॥

अर्थ : फरीद कहते हैं कि भौतिक पदार्थों से दिल न लगाओ। अन्त समय कोई भी तुम्हारा साथ नहीं देगा।

(११)

'फरीदा' तनु सुका पिंजर थीया तलयां खूडहि काग ।
अजै सुख न बौहुड़ियो देख वन्दे के भाग ॥

अर्थ : फरीद कहते हैं कि तन सूख कर पिंजर हो गया, पाँव के तलवों में काग ठोंग मारते हैं, परन्तु अभी तक प्रभु-दर्शन नहीं हुए। देखो, यह मनुष्य का भाग्य है !

(१२)

पहले पहिरै फुलड़ा फल भी पछ्छो रात ।
जो जागनि लहनि सेई साई कन्नो दात ॥

अर्थ : रात के पहले पहर में फूल लगता है। पिछली रात को फल भी लगता है। जो जागते हैं, वह प्रभु-दर्शन के अधिकारी बनते हैं अर्थात् नाम के जप से मन एकाग्र होने लगता है और मन में प्रभु-दर्शन की लगन पैदा हो जाती है। नाम रूपी फल का आनन्द भी प्राप्त हो जाता है।

(१३)

तपि तपि लुहि हाथ मरोरउं ।
बावलि होई सो सहु लोरउं ॥
तैं सहि मन महि की-आ रोसू ।
मुझ अवगुण सह नाहि दोसु ॥
तैं साहिब की मैं सार न जानी ।
जोबन खोई पाछे पछतानी ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काली कोइल तू कित गुन काली ।
अपने प्रीतम को हउँ विरहै जाली ।।
पिरहि विहून कतहि सुख पाए ।
जा होई कृपालु ता प्रभु मिलाय ।।
विघण खूही मुंध अकेली ।
ना कोई साथी न कोई वेली ।।
वात हमारी खरी उडीणी ।
खंनिग्रहु तिखीं वहुत पिईणी ।।
उस ऊपरि है मारगु मेरा ।
शेख़ फ़रीदा पंथु सरहारि सवेरा ।।

अर्थ : विरह ताप से मेरा सारा शरीर जल रहा है। अपने हाथों को मरोड़ती हूं। प्रीतम-मिलन की लालसा ने मुझे वावली बना दिया है। प्यारे, तू मुझ से रूठ गया था, इसमें मेरा ही दोष था। मैंने अपने साहिव की सार नहीं पहचानी। मैंने अपना जीवन अकारथ गँवा दिया। मैं वहुत पछता रही हूं। अपने प्रीतम के विरह में जल-भुनकर कोयल काली हो गयी। प्रीतम से अलग होकर किसी को सुख नहीं मिला। प्रभु-मिलन प्रभु-कृपा से ही हो सकता है। संसार रूपी कुआँ वहुत गहरा है। मैं—जीवात्मा—उसमें जा पड़ी हूं। मेरी वहाँ कोई सहेली नहीं। मेरा मार्ग वहुत विकट है, दोधारी तलवार से भी तेज और पैना, उस पर मुझे चलना है। शेख़ फरीद, तैयार हो जा, उस मार्ग पर तुझे चलना है। अभी समय है।

(१४)

समना मन माणिक ठाणु भूलि म चांगवा ।
जे तउ पिरया दी सिक हिआउ न ठाहे कहीदा ।।

अर्थ : हर दिल एक रतन है, उसे दुःख देना किसी प्रकार अच्छा नहीं। अगर तू प्रीतम का आशिक़ है, तो किसी के दिल को न दुखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु नानक और उनकी शिक्षा

गुरु नानक देव का जन्म—गाँव तलवण्डी में, जो बाद में ननकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ, संवत् १५२६ में हुआ था। वह गाँव पश्चिमी पाकिस्तान के जिला शेखुपुरा में, लाहौर से लगभग ३५ मील दूर है। हिन्दू और सिख इसे अपना तीर्थ-स्थान मानते हैं। जब धर्म के नाम पर मनमानी चल रही थी, मानव-मानव में प्यार की भावना नहीं रही थी, चूंकि जहाँ प्यार नहीं, वहाँ धर्म नहीं और जहाँ धर्म नहीं वहाँ सुख नहीं, इसलिए सब दुःखी थे, ऐसे समय गुरु नानक का जन्म हुआ। बालक जब माता के गर्भ से बाहर आता है तब रोने लगता है। परन्तु बालक नानक उस समय हँस रह था, जिससे माता-पिता तथा लोगों को बालक के सम्बन्ध में यह विचार हुआ कि बालक कोई विशेष बालक है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत सत्य सिद्ध होने लगी। आपके पिता कालूचन्द और माता तृप्ता सौम्य प्रकृति के साधारण व्यक्ति थे। गुरु नानक देव बचपन से ही शान्त स्वभाव के प्रतिभाशाली पुरुष थे। सत्संग, प्रभु-चिन्तन, एकान्त-सेवन में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। उनका विद्यार्थी-जीवन परिश्रमी तथा योग्यतापूर्ण रहा। उन्होंने पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत, फारसी की अच्छी शिक्षा प्राप्त की। उनको गृहस्थ आश्रम में फँसाया गया। उनके दो पुत्र श्रीचन्द और लक्ष्मी चन्द हुए। श्रीचन्द ने संन्यास लेकर उदासी सम्प्रदाय की नींव रखी। पिता ने उनको दुनियादारी के काम-धन्धों में फँसाने की बड़ी कोशिश की, परन्तु उनका मन कहीं नहीं लगा। एक दिन वह सौदा तोल रहे थे; जब तेरह पर आये तो 'तेरा-तेरा' करते रह गये। न मालूम ग्राहकों को कितना तोल कर दे दिया। एक बार पिता ने उनको कुछ रुपया देकर व्यापार के लिए भेजा। रास्ते में कुछ भूखे नंगे साधु मिले। उन्होंने सारी रकम उनको बाँट दी। पिता ने अहवाल पूछा तो कहा—"आपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौदा करने के लिए भेजा था, मैं सच्चा सौदा कर आया हूं।" जिस स्थान पर ज़रूरतमंदो में रकम बाँटी गयी, वह स्थान आज तक "सच्चा सौदा" के नाम से मशहूर है। यह साधारण खेतीहर और व्यापारी न बन कर राम के सच्चे खेतीहर और व्यापारी बन गये। घरवार छोड़ दिया। देश-विदेश घूम कर जगह-जगह मानवता के ऊँचे आदर्शों का प्रचार करने लगे। 'नाम' की खेती करनी थी, उनका खेती बाड़ी में कैसे मन लगता ? उनको 'नाम' का व्यापार करना था, वह दुनियादारी का व्यापार कैसे करते ? पिता ने उनको खेती-वाड़ी के धन्धे में फँसाने की कोशिश की, लेकिन वह लोगों को 'नाम' की खेती का उपदेश करने लगे —

इहु तनु धरती बीजु करमा करो,
सलिल आपाउ सारंग पाणी।
मन किरसाणु हरि रिदै जमाई ले,
इउ पावसी पदु निरवाणी॥ (रागुसिरी)

उनको व्यापार का काम सौंपा गया, लेकिन वह 'नाम' के ही सच्चे सौदे की बात करने लगे।

'वणजु करहु बणजारि हो वखरू लेहु संभालि,
तैसी वसतु विसाहीए जैसी निबहै नालि।
अग्गै साहु सुजाणु है, लैसी वस्तु संभालि॥ (रागुसिरी)

वह जीवन के खोटें व्यापार से दूर भागना चाहते थे। उन पर तो 'नाम' के सच्चे व्यापार की धुन ही सवार थी। उनका कहना था—

खोटे बणजि वणंजिये मनु तनु खोटा होए

गुरु ग्रन्थ साहिब में 'महला १' के शीर्षक से जितनी वाणी है, वह सब तथा गुरु ग्रन्थ साहिब के आरम्भ में जो 'जपुजी' है वह सिख धर्म की प्रातः कालीन प्रार्थना का मंगल पाठ है। "रहिरास" तथा "सोहिला" में भी गुरु नानक देव की जीवन-शिक्षा का ऊँचा विचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलता है। इनका सोदरू पद बहुत प्रसिद्ध है। गुरु नानक देव सत्य में ही ईश्वर के दर्शन करते थे। सत्य की आराधना ही उनकी ईश्वर-भक्ति का एक-मात्र स्वरूप था। यही उनका प्रचार था। उनकी जीवन शिक्षा के तीन सूत्र हैं—"नाम जपो, किरत करो और वन्ड छको।" "नाम जपो" का अर्थ है, हरिनाम का जप करो और जीवन के आचरण को ऊँचा उठाओ। नेक बनो और एक बनो, यह उनकी शिक्षा का मूल आधार था। "किरत करो" का अर्थ है जीवन को शोषण-रहित बनाओ। किरत अर्थात् शरीर-श्रम। गुरु नानक देव मानव-समाज को श्रमनिष्ठ बनाना चाहते थे। वह मानते थे कि शरीर-श्रम से नेक कमाई हो सकती है। उन्होंने एक बार श्रमजीवी लालो नाम के बढ़ई के भोजन को उसके मालिक ज़मींदार भागों के भोजन की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया। पसीने की कमायी हुई रोटी को दूध की रोटी, और शोषण से कमायी हुई रोटी को खून से सनी हुई बताया। गुरु नानक देव समाज में श्रम-प्रतिष्ठा पैदा करके सामाजिक समानता के ऊँचे लक्ष्य तक पहुंचना चाहते थे। "वन्ड छको" का अर्थ है आपस में मिल-बाँट कर खाना। एक दूसरे का सुख-दुख बाँट लेना। गुरु नानक का यह विचार गांधी और विनोबा का, सर्वोदय और ग्रामदान का विचार है। यह मानव-कल्याण का मार्ग है। मानव-जीवन की सभी समस्याओं का समाधान इसी एक विचार में निहित है।

गुरु नानक देव की वाणी सर्व-धर्म आदर, भक्ति-भाव तथा उच्च कोटि के ज्ञान से परिपूर्ण है। गुरु नानक को मुसलमान 'मस्त कलन्दर' और हिन्दू 'बाबा' के नाम से पुकारते थे। वह सूफी-सन्तों जैसी पोशाक पहनते थे। हिन्दू-साधुओं की तरह तिलक लगाते थे, माला, कण्ठी पहनते थे। उनकी वाणी में इतना रस था कि हिन्दू-मुसलमान दोनों उनको अपना गुरु मानते थे।

उन्होंने जात-पाँत की खाई से निकल कर मानव-एकता और मानव-प्रेम का ऊँचा आदर्श लोगों के सामने रखा। सबका भगवान एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और सब मानव बराबर हैं, ऐसा विचार वह लोगों को देने लगे। उन्होंने कुरान और पुरान की शिक्षा को एक सिद्ध करते हुए कहा कि दोनों मानव-प्रेम सिखाते हैं। उन्होंने इस बात का प्रचार किया कि ऊँच-नीच, अमीर-गरीब में कोई भेद नहीं है—

नीचा अन्दर नीच जाति नीची हूं अति नीच,
नानक तिनके संग साथि बड़िया स्यों की रीस।
जिथै नीच संभालि अनि तिथै नदरि तेरी बखशीश ॥

गांधी जी ने आश्रम की सर्व-धर्म-प्रार्थना में गुरु नानक देव की सर्वोत्तम रचना "जपुजी" से सिक्ख-धर्म की प्रार्थना का एक अंश इस प्रकार शामिल किया हैं :

१ ॐकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ
निरवैर अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि ॥ जपु
आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु।

अर्थ—उसी गुरु की हम सब पर कृपा है। वही सत्य है, एकरस है, सबका पालन-पोषण करनेवाला है। वह सब प्रकार से पूर्ण है, समर्थ है। भय-मुक्त है। वैर-विरोध-रहित है। वह असीम है। जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त है। स्वयंभू है। तीनों कालों में सत्य-स्वरूप है।

"जपुजी" में गुरु नानक देव की अमृत वाणी का अन्तिम महा वाक्य है—

पवन गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवस राति दुई दाई दाईआ खेलै सगल जगतु ॥

अर्थ—पवन हमारा गुरु है, जल हमारा पिता और विशाल पृथ्वी हमारी माता। दिन और रात यह दोनों हैं हमारी धाय। सारा संसार इन्हीं की गोद में खेलता है।

उस परब्रह्म, परमेश्वर, असीम सत्य का दर्शन गुरु नानक देव की वाणी में इस प्रकार मिलता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सो दरु केहा सो घरु केहा । जितु बहि सरब सभाले ॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ॥
केते राग परी सिउ कहिअनि केते गावणहारे ॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ॥
गावहि चित्त गुपत् लिखिजाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि ईसरु वरमा देवी सोहनि सदा सवारे ।
गावहि इन्द्र इन्द्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ॥
गावहि सिद्ध समाधी अन्दरि गावनि साध विचारे ॥
गावहि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ॥
गावहि पंडित पड़नि रखीसर जुगजुग वेदा नाले ॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मच्छ पइआले ॥
गावहि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महावल सूरा गावहि खाणी चारे ॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधुनो गावहि जों तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते गावहि से मैं चिति न आवनि नानक किया बीचारे ॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वाड आई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकुम न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥

अर्थ—तेरा द्वार, तेरा घर कैसा होगा, जहाँ तू बैठ कर सारे संसार की सार संभाल करता है ! वहाँ नाना प्रकार के बाजे अगणित नाद हैं । बजाने-वाले भी अनेक हैं । वहाँ अनेक गायक तरह-तरह के राग-रागिनियों को अलाप रहे हैं । जल, वायु और अग्नि तेरे गुणों का वर्णन करते नहीं थकते । धर्मराज तेरे ही द्वार पर तेरी धर्मनीति का गुणगान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर रहा है। मनुष्यों के बुरे-भले कर्मों का हिसाब रखनेवाला चित्रगुप्त तेरे ही गीत गाता है। शंकर, ब्रह्मा और देवी, जिन्हें तूने यशस्वी बनाया है, तेरा ही यश गाते हैं। इन्द्र अपने इन्द्रासन पर बैठ कर अपने राज-दरबारियों सहित तेरी प्रशंसा कर रहे हैं। साधक और सिद्ध तेरे ही चिन्तन में मस्त हैं। यति, सत्य की खोज करनेवाले, संतोषी तथा शूरवीर तेरा ही राग अलापते हैं। बड़े-बड़े वेदपाठी पंडित और ऋषि तेरा ही गुणगान करते हैं। मृत्यु-लोक, स्वर्ग-लोक और पाताल को मोह लेनेवाली शक्ति तेरे ही गाने गा रही है। तेरे पैदा किये हुए रत्न और अड़सठ तीर्थ तेरी ही कीर्ति का गान कर रहे हैं। महा योद्धा, शूरवीर, बलवान् सब तेरी ही तारीफ कर रहे हैं। चारों प्रकार की योनियों के जीव, समस्त ब्रह्माण्ड जिन्हें तूने ही रचा है, तथा सहारा दिया है, सभी तेरी प्रशंसा कर रहे हैं। नानक, उन सब की गिनती कैसे की जाय ? वही एक सत्य है। सत्य ही ईश्वर है। वही सबकी रचना करनेवाला, सबका पालनहार है। वही पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा। वह वही करता है जो उसे भाता है। उसे हम ऐसा करने या न करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। वह सजा और जजा का मालिक है। बादशाहों का बादशाह है। जो कुछ हो रहा है, उसकी इच्छा से ही हो रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभु-भक्त सूरदास

सूरदास प्रसिद्ध नेत्रहीन प्रभु-भक्त हुए हैं। उनका जन्म ५ वैशाख १६३५ को सिही नगर में व्रज के समीप एक सारस्वत ब्राह्मण-घराने में हुआ था।

सूरदास जब पाँच वर्ष के थे, तब अपनी माता से प्रभु-भक्ति की चर्चा करने एवं मन्दिर आदि में घुमा लाने की प्रार्थना किया करते थे। उनकी माता उन्हें कहतीं—"चुप रहो, तुम नेत्रहीन हो; तुम्हें रोज़-रोज़ बाहर घुमाने कौन ले जाय? हम निर्धन हैं, तुम्हारे पिता एक ग़रीब किसान हैं। हम दोनों को घर के काम-काज से ही अवकाश नहीं मिलता। तुम्हारे लिए नौकर भी तो नहीं रख सकते। तुम घर के एक कोने में चुपचाप बैठे रहा करो।"

सूरदास माता की इस प्रकार की ताड़ना से दुखी होकर, घर के एक निश्चित कोने में जा बैठ जाते और प्रभु-भक्ति के गीत गाने लगते—"प्रभु! मुझे अपनी शरण में ले लो। आयु-भर नेत्रहीन रहकर मैं कैसे दिन विताऊँगा? घर में और घर से बाहर जहाँ-कहीं मैं जाता हूँ, मुझ पर झाड़ पड़ती है। मुझे अपमानजनक बातें सुननी पड़ती हैं। मेरी ताड़ना होती है।" आये दिन की माता-पिता की मार-पीट की घटनाओं के विचार से उनका दिल काँपने लगता।

घर में मार-पीट, गाली-गलौज और अपमान का वातावरण बढ़ता गया। सूरदास के लिए यह सब सहन करना कठिन हो गया। एक दिन जब पिता उन्हें बुरी तरह पीट रहे थे, सूरदास ने रोते तथा बिलखते हुए कहा—"पिता जी, मुझे मत मारो। मैं सदा के लिए आप का घर छोड़ रहा हूँ। चाहे मुझे भूखों मरना पड़े, मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा भगवान अगर चाहेंगे तो मेरी रक्षा करेंगे।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"यह मुँह और मसूर की दाल ! नेत्रहीन होकर भी कितनी शेखी बघारता है। जा, घर से निकल जा, नहीं तो मैं तुम्हें स्वयं निकाल दूँगा।"—पिता ने डाँटा।

माता ने सोचा—"इस अन्धे बालक को कौन रखेगा ? थोड़े दिनों में झक मार कर वापिस आ जायेगा।"

सूरदास लाठी के सहारे, रास्ता चलते लोगों की सहायता से पास की एक नदी के किनारे पहुँचे। स्नान करके नदी के तट पर प्रार्थना की और सो गये। उन्होंने स्वप्न देखा—उनकी आत्मा परमात्मा से एक-रूप हो गयी है और संसारी लोग जो उन्हें दुःख पहुँचाते थे, अब आदर के साथ उनकी उपासना कर रहे हैं। जब उनकी नींद खुली तो उन्होंने अपने प्रभु से प्रार्थना की—"मुझे सदा के लिए नेत्रहीन रहना स्वीकार है, मुझे संसार के कष्ट सहना मंजूर है, परन्तु मैं तुम्हारी शरण में रहना चाहता हूँ। मुझे दिव्य नेत्र दो ताकि मैं तुम्हारी दिव्य ज्योति को देख सकूँ।"

सूरदास नदी के तट पर साधना करने लगे। नित्य प्रति अनेक प्रभु-भक्त तथा साधु स्नान, सन्ध्या, उपासना के लिए वहाँ आते और अन्धे बालक को प्रसाद, भोजन आदि की भेंट दे जाते। एकान्त-प्रिय अन्धे बालक को देख कर लोगों को उस पर दया आ जाती। साधु-महात्मा उसे नियमपूर्वक खाना खिलाते और उन्होंने सूरदास के निवास के लिए एक छोटी सी झोंपड़ी भी तैयार करवा दी।

सूरदास को जब इस प्रकार मानवीय-प्रेम का अनुभव होने लगा तो वह समय-समय पर प्रसन्न मुद्रा में प्रभु के गीत गाते-गाते नाचने लगते। वे साधु-संतों की सेवा करते। साधु उनकी सेवा वृत्ति के कारण उनसे बहुत प्यार करते।

सूरदास सुने हुए मंगल गीतों को मधुर वाणी से गाते और सुनने वालों को मुग्ध कर देते। वे धीरे-धीरे गाने-बजाने के साधनों का उपयोग करने लगे और कुछ ही दिनों में एक अच्छे कलाकार हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूकं करोति वाचालम्

भगवान् की अपार दया से गूंगे भी बोलने लगते हैं।

प्रभु ! तुम अनहोनी को होनी बना सकते हो। तुम्हारी दया से गूंगे बोलने लगते हैं और लंगड़े पर्वत पार कर जाते हैं। क्या हे सर्व शक्तिमान् प्रभु ! मुझे दिव्य नेत्र नहीं प्रदान कर सकते, जिससे मुझे तुम्हारा दिव्य दर्शन प्राप्त हो सके ?

एक भूमिपति ने सूरदास के लिए पूजा स्थान—मन्दिर—बनवा दिया। सूरदास भगवान् के दरबार में अपने आपको भूलकर प्रेम मुद्रा में गाने लगते :—

मधुकर श्याम हमारे चोर।
मन हर लीनो माधुरी मूरत, निरखि नैन की कोर,
सिरपे जाके मुकुट सुहाए, माथे तिलक, नैन कजराए,
मुख सुन्दर ज्यों मोर।
'सूरदास' के चोर कन्हैया, मनमोहन मुरली के बजैया,
नटखट नंद किशोर।

सूरदास की चर्चा सब जगह होने लगीं। दूर-दूर से लोग सूरदास के दर्शनों के लिए आने लगे। सूरदास अपना अधिक समय संगीत कला के अभ्यास तथा भक्ति-भाव के गीतों के निर्माण में लगाते।

भौतिक सुखों का माया-जाल बढता गया। एक रात जब सूरदास अपने कमरे में सो रहे थे, उनको स्वप्न में प्रेरणा हुई—"जब तुम घर से निकले तब तुम्हारे मन में प्रभु-दर्शन की कितनी तड़प थी ? परन्तु अब तुम दुनिया की सुख-सामग्री बढ़ाने में अपना समय व्यर्थ गँवा रहे हो। तुम्हें तो आत्म-साक्षात्कार करना था, तुम अपनी देह की सार-सँभाल में ही लग गये। तुम रास्ता भटक गये। तुमने आध्यात्मिक मार्ग को छोड़ कर भौतिक मार्ग अपना लिया। भौतिक मार्ग प्रभु का मार्ग नहीं है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भौतिक मार्ग तो विनाश का मार्ग है।" यह विचार आते ही सूरदास फिर से प्रभु-मार्ग पर चल पड़ते हैं।

बहुत वर्षों की कठिन तपस्या और त्याग के पश्चात् सूरदास को आत्म-साक्षात्कार हुआ। प्रभु ने उनका हाथ पकड़ कर उनकी जीवन-नौका को पार लगा दिया।

जा पर कृपा राम की होई।
ता पर कृपा करे सब कोई॥

सूरदास प्रभु-प्रेम में मस्त होके गाने लगते :

हाथ मरोड़ के जात हो दुर्बल जाने मोय।
अन्तर में से जो खसो तो मर्द कहूँ मैं तोय॥

सूरदास वल्लभाचार्य से काशी में जाकर मिले। वल्लभाचार्य उनके भक्ति-भाव से बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने उनको वैष्णव सम्प्रदाय में शामिल कर लिया। वल्लभाचार्य ने सूरदास को भगवद्गीता का उपदेश दिया और मन्त्र-दीक्षा से सुशोभित किया। केवल इतना ही नहीं, उन्हें अपने साथ तीर्थ-यात्रा में ले गये। उन्होंने गोकुल में नाथजी के मन्दिर की स्थापना की और सूरदास को उसका पुजारी नियुक्त कर दिया। सूरदास ने अपने भक्ति-पूर्ण जीवन का अधिकांश भाग यहाँ विताया। पूजा-पाठ, सन्ध्या, उपासना, संगीत-कीर्तन आदि यह उनकी साधना के अंग रहे। एक वार मन्दिर में हरि की मूर्ति को वस्त्र-शृंगार से वंचित पा कर सूरदास को हार्दिक क्लेश हुआ और उनके मुख से सहसा निकला:

देखे री हरि नंग मनंग।

जब सुत भूषन अंग विराजत, बसनहीन छबि उठत तरंग।
अंग-अंगप्रति अमित माधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंग।
किलकत दधि सुत मुख ले मन भरि, 'सूर' हसत ब्रज जुवतिन संग॥

सूरदास का यह दिव्य विचार कितना मौलिक, कितना सुन्दर, कितना हृदयस्पर्शी है!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार सम्राट अकबर का एक प्रसिद्ध दरबारी संगीत कलाकार तानसेन सूरदास का एक गीत गा रहा था। अकबर ने गीत के आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित होकर पूछा—यह गीत किसने रचा है ?

"सूरदास का है। वह मथुरा में रहता है। इसका प्रत्येक शब्द चित्त की गहराई में उतरनेवाला है। हृदय को स्पर्श करने वाला है। सम्राट् महोदय, सूरदास की मधुर वाणी उसके शब्दों से भी अधिक आकर्षक है। एक बार उसके मुखारविन्द से ही सुना जाय।"—कलाकार ने उत्तर दिया।

अकबर और तानसेन मथुरा पहुंचे। सूरदास को निमन्त्रण भेजा, उसका राजसी ठाठ से स्वागत किया और उनसे भजन बोलने की प्रार्थना की। सूरदास ने गीत गाया :

मन रे तू करि माधव सों प्रीति

अकबर सूरदास की मधुर वाणी और आध्यात्मिक चिन्तनशीलता से बहुत प्रसन्न हुए और कहा—"अब सम्राट् की प्रसंशा में गाओ।" सूरदास को यह अच्छा न लगा। उन्होंने प्रभु-महिमा का ही एक गीत गाया।

अकबर ने प्रसन्न होकर कहा—"सूरदास जो चाहो सो माँगो।"

सूरदास ने निर्भय होकर कहा, " आपने मुझे माँगने के लिए कहा है। मेरी यही माँग है कि फिर कभी मुझे मत बुलाना।"

अकबर समझ गये और सूरदास के उत्तर से प्रसन्न होकर लौट गये।

सूरदास का जब अन्त समय आया तो वे गोकुल छोड़ कर प्रशोली चले गये। जब उनका शरीर छूटने लगा तो उन्होंने अपने आपको नाथजी के झण्डे में लपेट लिया और धीरे-धीरे आत्मा का देह से सम्बन्ध तोड़ दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरोसो हृढ़ इन चरनन केरो।
श्री वल्लभ-नख-चन्द्र छटा बिन सब जग मांहि अन्धेरो।
साधन और नहीं या कलि में जासो होत निबेरो।
'सूर' कहे मैं दुविध आंधरो बिना मोल को चेरो॥

यह विचार उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु वल्लभाचार्य के लिए व्यक्त किये।

उनकी एक और सुन्दर कविता है :—

बलि बलि बलि हौं कुंवर राधिका।
नंद सुवन जासो रति मानो खंजन नैन रूप रस माते।
अति से चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि बात निकट स्रवनन के उलट फिरत ताकत फंदाते।
'सूरदास' अञ्जन गुन अटके तीतर अब उड़ि जाते॥

इस प्रकार प्रभु के हृदयस्पर्शी गीत गाते-गाते भक्त शिरोमणि सूरदास का १७३८-३९ में १०३ वर्ष की आयु में देहान्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हज़रत बुल्हे शाह की सिखावन

बुल्हेशाह पंजाब के प्रसिद्ध आत्मज्ञानी थे। आप लाहौर में रहा करते थे। कठिन तपस्या और गुरु-भक्ति के पश्चात् गुरु ने प्रसन्न हो कर आपको ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। ब्रह्मज्ञान पाकर आप मस्ताना-वार घूमने लगे तथा ब्रह्मज्ञान का प्रचार करने लगे।

हज़रत बुल्हेशाह का जन्म ज़िला लाहौर में क़सूर शहर के नज़दीक पंडोकी नाम के गाँव में सन् १६८० ई० में एक सैयद-मीर परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री महमूद अपने समय के माने हुए दरवेश थे। मनुष्य पर संग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। एक सैयद परिवार, दूसरा प्रभु-भक्त पिता, इस सत्संग के वातावरण ने बुल्हेशाह को आत्मज्ञान के रंग में रंग दिया। वह बाल-अवस्था से ही एकान्तप्रिय तथा साधुसन्तों से प्रेम करनेवाले थे। उर्दू, फारसी तथा अरबी के अच्छे जानकार थे।

हज़रत इनायत शाह क़ादरी वली अल्हा उनके गुरु थे। पहली बार जब बुल्हे शाह उनके दरबार में पहुंचे, तब साहिब अपने खेत में प्याज की पौध लगा रहे थे। शाह ने उन्हें नमस्कार किया। शाह ने पूछा, "कहो बुल्हे, कैसे आना हुआ?" "प्रभु-मिलन की कोई तरकीब बतायी जाय?"—बुल्हे ने कहा। उन्होंने उत्तर दिया।

बुल्हे ! रबदा की पावणा एधरों पुटणा ते ओधर लावणा ॥

अर्थ : प्रभु-मिलन का उदाहरण ऐसा है जैसे एक स्थान से पौधा निकाल कर दूसरे स्थान पर लगा देना। जो विचार इस समय 'मेरे' और 'तेरे' का भेद पैदा कर रहा है। उसे छोड़कर आत्मज्ञान प्राप्त करना तथा परमात्मा से एकरूप हो जाना।

बुल्हा मस्त होकर प्रभु का गुणगान करने लगा। बुल्हे ने गुरु की दीक्षा प्राप्त की, ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और जीवन भर विवाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के बन्धन से मुक्त रहे। उनकी मृत्यु सन् १७५५ में हुई। उनकी समाधि अब भी क़सूर में है और वहाँ सूफी संत जमा होकर मस्तानावार बुल्हे शाह की क़ाफ़ियाँ गाया करते हैं।

प्रभु-दर्शन पाकर बुल्हा गर्व करने लगा। जो दीक्षा के अधिकारी नहीं थे, उनको दीक्षा देने लगा। इससे शाह इनायत ने नाराज होकर उसे निकाल दिया। जब बुल्हे शाह प्रभु-कृपा से परिपक्व हो गये, तब एक दिन वह नृत्यसेविका का रूप धारण करके शाह इनायत के सामने सूफी सन्तों की एक विराट सभा में नाचने तथा मस्त होकर गाने लगे :

"मेरे प्रभु, मेरे गुरु ने मुझे छोड़ दिया है। हाय ! अब मैं क्या करूँ ?
जिसने मुझे छोड़ दिया है, मैं उसकी खोज में हूँ। जुदाई की आग
की लपटें आगे बढ़कर उसकी खोज कर रही हैं।
गुरु के बिना मैं कहीं का नहीं रहा।"

शाह इनायत बहुत खुश हुए और कहा—'अरे तू बुल्हा है ?' बुल्हेशाह ने कहा—'हज़रत बुल्हा नहीं भुल्ला अर्थात् भूला हुआ।' शाह इनायत ने उन्हें गले लगा लिया। उसके पश्चात् बुल्हेशाह देशभर में राष्ट्रीय एकता और सर्वधर्म-समभाव का प्रचार किया।

बुल्हे शाह सूफी मत (इस्लाम धर्म की सन्त परम्परा) के अनुयायी थे। सूफी का अर्थ है फकीर जो फाक़ा (उपवास) में विश्वास रखता हो, जो सन्तोषी हो, जो यादे इलाही (प्रभु स्मरण) में मस्त रहता हो, जो रियाजत (आध्यात्मिक अभ्यास) में समय व्यतीत करता हो, जिस पर फ़ैज (प्रभु-कृपा) हो, जिसे कुर्ब (प्रभु मिलन का सौभाग्य) प्राप्त हो चुका हो, जिसका यार (मित्र) प्रभु हो, जो रहमत (प्रभु की दया) का अधिकारी हो।

सूफी मत के अनुसार मनुष्य चार प्रकार के होते हैं :

१. नामर्द—भौतिक पदार्थों को चाहनेवाले।

२. मर्द—मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग तथा सुख चाहनेवाले।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. जवाँमर्द—मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग तथा प्रभु दोनों की चाह रखनेवाले।

४. फर्द—केवल मतलाशी (प्रभु-दर्शन) की खोज करनेवाले।

सूफीमत का सार है एक ओर पूर्ण त्याग दूसरी ओर पूर्ण प्रभु-प्रेम।

सूफी के वस्फ़ (गुण) ये हैं—

१. सब्र (सन्तोष), फ़ना (नश्वर) संसार, रजा (जो प्रभु को स्वीकार हो), तवक्कुल (भरोसा)।

२. तौहीद (प्रभु से एकरूप होना)।

३. वज्द (प्रभु की याद में मस्त रहना)।

४. मग़फरत (प्रभु-दया, क्षमा)।

५. इश्क (प्रभु-प्रेम)।

यही गुण हैं, जिनके कारण सूफ़ी मत की ओर कुल संसार आकर्षित हुआ।

बुल्हे शाह की वाणी—क़ाफियाँ और सीहरफ़ी पंजावी में हैं। आज भी लोग उनकी क़ाफियों और सीहरफी को मज़ा ले-ले कर गाते हैं। उनकी उच्च कोटि की वाणी का संक्षिप्त दर्शन इस प्रकार है :—

आपणै आपनूँ समझ पहले, की वस्तु है तेरड़ा रूप प्यारे
बाँझ आपणै आपदे सही कीते, ब्यिों विच वसूरे दे दुःख भारे
होर लख उपाय न सुख होवी, पुच्छ वेख सियाणै जग सारे
सुख रूप अखण्ड चेतन है तूं बुल्हा शाह पुकार दे वेद चारे

अर्थ : बुल्हे शाह आत्मज्ञान की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं कि ऐ प्यारे मनुष्य! तू सबसे पहले अपने आपको पहचान कि तेरा स्वरूप या तेरी ज़ात क्या है या तू कौन है? आत्मज्ञान के बिना तू आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकार के दुखों से जल रहा है। आत्मज्ञान के बिना लाख कोशिश करने पर भी सुख,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्ति तथा वास्तविक ग्रानन्द की प्राप्ति नहीं होगी। निःसन्देह कुल संसार के ग्रच्छी सूझ-बूझ रखनेवाले लोगों, 'दानिशमन्दों' से मालूम कर ले। चारों वेद पुकार-पुकार कर तेरे स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं। तू सत्-चित्-ग्रानन्द-स्वरूप है।

यार पाया सइयो मांरियो नी मैं ताँ ग्रापरणा ग्राप गंवाये के जी
रही सुध न बुद्ध जहान केरी थकी वृत्ति ग्रानन्दमों जाये के जी
ग्रठ पहर विश्राम नहीं कम कोई दूजी ज्ञान दी भा जाये के जी
बुल्हा शाह मुबारकां लख देवो होई शान्ति जानी गल लायेके जी

अर्थ : ऐ मित्रो, सखा-सहेलियो, मैंने ग्रपना ग्रहंकार, ग्रहंभाव त्याग करके ही ग्रात्मसाक्षात्कार कर लिया है। ग्रब भौतिक संसार को देखने वाली बुद्धि नहीं रही। ग्रंतःकरण की ब्रह्माकारवृत्ति ग्रपने ग्रानन्द-स्वरूप में स्थित हो गयी है, जिससे पूर्ण निर्विकल्प ग्रवस्था प्राप्त हो गयी है। ग्रब तो ग्राठों पहर ग्रानन्द ही ग्रानन्द है, दूसरी कोई बात नहीं। कारण यहाँ निरन्तर ब्रह्म-ज्ञान की ग्रग्नि जल रही है, जिसमें द्वैत रूपी ईंधन जल कर राख हो गया है। बुल्हा शाह कहता है—ग्रब मुझे लाख बधाई दो कि मैंने यार को गले लगा लिया है, ग्रर्थात् ग्रात्मसाक्षात्कार कर लिया है।

बुल्हा शाह की सिखावन के कुछ ग्रौर नमूने :—

जीत जीत के उमर गँवाई हुरण तू हार फक़ीरा।
जीने दा मुल ग्रध कसीरा हारे दा मुल हीरा ॥
हीरा लैंदा लख करोड़ी कोड़ी मुल कसीरा।
बुल्हा जे तूं हार न जाणे,,वे मुरशिद वे पीरा ॥ १ ॥
तेरा नाम धिहाई दा, सांई तेरा नाम धिहाई दा ॥
बुल्हे नालों चुल्हा चंगा, जिसते नाज पकाई दा।
रल फकीरां मजलिस कीती, भोरा-भोरा खाई दा ॥
रंगरण नालों खिगरण चंगा,जिसते पैर घसाई दा।
बुल्हा उसनूं सोई पावे,जेहड़ा बकरा बणे कसाई दा ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टूणें कामल करके नी, मैं प्यारा यार मनावाँगी ।
इस टूणे नूं पढ़ फूंकांगी, सूरज अगन वलावाँगी ॥
अखियां काजल काले वादल, भवां सो अग लगावांगी ।
और बसात नहीं कुझ मेरी, जीवन घड़ी गुंदावांगी ॥
सत समुद्र दिल दे अन्दर, दिल से लहर उठावाँगी ।
बिजली होकर चमक डरावां, मैं वादल घिर-घिर जावांगी ॥
इश्क अंगीठी अधरू तारे, सूरज अगन चढ़ावांगी ।
ला सवां शह नूं गल अपने, तद मैं नार कहावांगी ॥
ना मैं व्याही ना मैं कुंवारी, बेटा गोद खिलावाँगी ।
बुल्हा लामकान दी बेड़ी उत्ते, वहके नाद वजावाँगी ॥ ३ ॥
मुंह आई बात न रहंदी है, झूठ आँखां ते कुझ वचदा है ।
सच आखियाँ भाँवड़ मचदा है, दिल दोहां गल्ला तो जचदा है ।
जच जच के जिहवा कहन्दी है, मुंह आई बात न रहँदी है ।
इक लाज़िम बात अदव दी है, सानूं बात मालूमी सब दी है ।
हर हर विच सूरत रब दी है, कहूं ज़ाहिर कहूं छुपेंदी है ।
जिस पाया भेद कलन्दर दा, राह खोजा अपने अन्दर दा ।
सुख वासी है इस मन्दर दा, जित्थे चढ़दी है ना लहंदी है ॥
एत्थे दुनियाँ विच्चं हनेरा है, अते तिलकन वाज़ी वेहड़ा है ॥
अन्दर बढ़ के देखो केहड़ा है, बाहर खलकत पई ढूंढ़ेदी है ।
एत्थे लेखा पाओ पसारा है, इस दा वखरा भेद नियारा है ।
इस सूरत दा चमकारा है, ज्यों चिणंग दारू विच पैंदी है ।
किते नाजो-अदा दिखलाई दा, किते हो रसूल मिलाई दा ।
किते आशिक वण-वण आई दा, किते जान जुदाई सहंदी है ॥
जदों जाहिर होए नूर होरी, जल गए पहाड़ कोहतूर होरी ।
तदों दार चढ़े मंसूर होरी, उत्थे शेखी न मैंडी तेंडी है ॥
जे जाहिर करां इसरार तांई, सब भुल जावन तकरार तांई ।
फिर मार न "बुल्हे" यार तांई, एत्थे मखफी गल सुहंदी है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असां पढ़या इलम तहक़ीक़ी है, औथे एहो हर्फ हक़ीक़ी है।
होर झगड़ा सब वधींकी है, एवें रौला पा-पा वहन्दी है ॥
"बुल्हा" शह असाँ थों वख नहीं, विन शह थीं दूजा कख नहीं
पर वेखन वाली अख नहीं, ताँही जान पई दुख सहंदी है ॥ ४ ॥

"बुल्हा" की जाणा मैं कौण ?

ना मैं मोमिन विच मसीतां, ना मैं विच कुफर दियां रीतां।
ना मैं पाकां विच पलीतां, ना मैं मूसा ना फिरऔन ॥
ना मैं अन्दर वेद किताबाँ, ना विच भंगाँ ना शराबां।
ना विच रिंदा मस्त खराबां, ना विच जागण न विच सौण ॥
ना विचं शादी ना ग़मनाकी, ना मैं बिच पलीती पाकी।
ना मैं आबी ना मैं खाकी, ना मैं आतिश ना मैं पौण ॥
ना मैं अरबी ना लाहौरी, ना मैं हिन्दी शहर नगौरी।
ना मैं हिन्दु तुर्क पिशौरी, ना मैं रहन्दा विच नादौण ॥
ना मैं भेद मज़हब दा पाया, ना मैं आदम हव्वा जाया।
ना मैं अपना नाम धराया, ना विच बैठक ना विच मौण ॥
अव्वल आखर आप नूं जाणा, ना कोई दूजा होर पछाणा।
मैंनों होर ना कोई सयाणा, बुल्हा शाह खड़ा है कौंण ? ॥ ५ ॥

इक नुकते विच गल मुकदी है ॥

फड़ नुक़ता छोड़ हिसावां नूं, कर दूर कुफ्र दियाँ बाताँ नूं।
गल ऐसे घर विच ढुकदी है ॥
एवें मत्था जिमीं घसाई दा, लमा पा महाराब दिखाई दा।
पढ़ कलमा लोक हंसाई दा, दिल अन्दर समझ न आई दा।
कदी वात सच्ची वी लुकदी है ॥
कई हाजी वण-वण आये जी, गल नीले जामे पाये जी।
हज वेच टके ले खाये जी, भला एह गल केहनूं भाये जी।
इक जंगल वहरी जान्दे नीं, इक काणा रोज़ी खान्देनी।
बे समझ वजूद खपान्देनीं, घर आवन होके मान्दे नीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवें चुलहयां विच जिन्द सुकदी है, कदी बात सच्ची वी लुकदी है ।
फड़ मुरशद अदब खुदाई हो, विच बस्ती वे परवाही हो ।
वे ख्वास वेनवाई हो, विच दिल दे खूब सफाई हो ।
"बुल्हा" बात सच्ची कदों रुकदी है ॥

दो : मक्के गयां गल मुकदी नाहीं । जिचर दिलों न आप मुकाइये ।
गंगा गियां गल मुकदी नाहीं, भावें सौ सौ गोते लाईये ।
गया गियां गल मुकदी नाहीं, भावें कितने पिंड भराईये ।
"बुल्हा शाह" गल मुकदी ताहीं, जद मैं नूं खड़े लुटाईये ॥ ६ ॥

हिन्दू ना नहीं मुसलमान, बहीए तिजण तज अभिमान ।
सुन्नी ना, नहीं हम शीया, सुलह कुल का मार्ग लिया ।
भुखे ना, नहीं हम रज्जे, नंगे ना, नहीं हम कज्जे ।
रोंदे ना, नहीं हम हसदे, उजड़े ना नहीं हम बसदे ।
पापी ना, सुधर्मी ना, पापी मन की राह न जाँ ।
"बुल्हा शाह" हर चित्त लागे, हिन्दू तुर्क दो जन त्यागे ।
पढ़-पढ़ शेख़ मशाइख़ होया, भर-भर पेट नींद भर सोया,
जांदी बार नैन भर रोया, डुबा विच, उरार न पार ।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

पढ़-पढ़ इल्म होया बोराणां, बेइल्मां नु लुट-पुट खाणां ।
एह की कीता यार बहाना, करें नाहीं कदे इंकार ।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

पढ़-पढ़ नफ़ल नमाज़ गुज़ारे, ऊंचीया बांगां-चांगां मारे ।
गुम्बज चढ़ के वाज़ पुकारे, तैंनु कीता हिरस खुवार ।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

पढ़-पढ़ मुल्हां होये क़ाज़ी, अल्ला इल्मां वाझों राज़ी ।
होवे हिरस दिनों दिन ताज़ी नफा नीयत विच गुजार ।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पढ़-पढ़ मसले रोज़ सुनावे, खाणां शक्क-शुबे दा खावे।
दस्सें होर ते होर कमावें, अन्दर खोट, बाहर सच यार।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

पढ़-पढ़ इल्म नजूम विचारें, गिणदा रासां बुर्ज सतारे।
पढ़े हज़ीमता मन्त्र भाड़े, अवजद गिणे तावीज शुमारे।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

इल्मों पए कज़िये होर, अखीं वाले, अंधे कोर।
फड़े साध ते छड्डे चोर, दोहीं जहानी होया खुआर।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

इल्मों पए हजारां फसते, राही अटक रहे विच रस्ते।
मारिआ हिजर दिल राये खस्ते, पिया विछोड़े दा सिर भार।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

इल्मों मियां जी पए कहावें, तंवा चुक-चुक मण्डी जावें।
धेला लेके छुरी चलावें, नाल क़साबां बहुत प्यार।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

बहुता इल्म इजाजील ने पढ़िया, झुगा झांबा उसदा सड़िया।
गल विच तौक़ लानत दा पड़िया, आखर गिया बाजी हार।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

जब मैं सबक़ इश्क दा पढिया, दरिया देख वहदत दा डरिया।
घुन घर दे विच अड़िया, साह इनायत कीता पार।

इल्मों बस्स करीं ओ यार—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दादू-दयाल

दादू दयाल का जन्म सन् १५४४ ई० में अहमदाबाद (गुजरात) में हुआ था। वह अछूत जाति से थे और उनका पेशा रुई धुनने का था। उनकी प्रभु-भक्ति के कारण लोग यह भूल गये कि वह किस जाति से हैं। हिन्दू-मुसलमान सब उनका आदर करते थे।

एक दिन दोपहर दादू दयाल अपनी झोपड़ी में मशक सी रहे थे। बाहर वर्षा हो रही थी। एक महात्मा वर्षा से बचने के लिए झोपड़ी के बाहर ओट में खड़ा हो गया। दादू दयाल ने यह कहते हुए उसे अन्दर बुला लिया—"अगर आपको मुझ-जैसे नीच जाति के घर में आने पर कोई आपत्ति न हो, तो आप बड़ी खुशी से अन्दर आ सकते हैं।"

महात्मा ने उत्तर दिया—"नहीं, नहीं, हम प्रभु के सेवक हैं। हमारे लिए सब बराबर हैं। ऊँच-नीच में हमारा विश्वास नहीं है।"

दादू दयाल ने चमड़े का आसन बिछा दिया और महात्मा उस पर बैठ गये। उनकी आँखों से अश्रु टप-टप बहने लगे। दादू दयाल ने सोचा उनको चमड़े के आसन के कारण दुख हुआ है। हाथ जोड़कर कहने लगे—"पवित्र आत्मा, मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया। मैं ग़रीब आदमी हूं। चमड़े के आसन के सिवा मेरे पास आपके आदर के लिए कोई दूसरी चीज़ ही न थी। महात्मा ने उत्तर दिया—"नहीं नहीं, मैं इस कारण दुखी नहीं हूँ। कारण कुछ और है। बात यह है कि आपने मुझे बाहर खड़ा देखकर अन्दर बुला लिया। मेरे प्रभु सदा मेरे हृदय के द्वार के बाहर खड़े रहे। मैं उनको न भीतर बुला सका, न हृदय-पट पर बिठा सका। इस कारण नेत्रों में अश्रु आ गये।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दादू दयाल ने पूछा—"आपका भगवान् कौन है ?"

महात्मा ने उत्तर दिया—"वही जो सबका है ?"

दादू दयाल के ज्ञान-चक्षु खुल गये। उसी दिन से वह द्वार पर खड़े भगवान् की खोज में लग गये। वर्षों तक तप करते रहे। अन्त में प्रभु-दर्शन के अधिकारी बने। ३० वर्ष की आयु में राजस्थान में जयपुर के पास सांभर गाँव में जाकर वस गये। अपनी आजविका के लिए दिन भर अपना धन्दा करते, रात को प्रभु-भक्ति के गीत गाते। ज्ञान प्राप्ति के लिए वहुत लोग उनके पास आने लगे। कहा जाता है कि एक बार सम्राट् अबकर भी देहली से चलकर उनके सत्संग में शामिल हुए।

अकबर ने दादू दयाल से पूछा—"खुदा की जात, अंग, वजूद और रंग क्या है?" दादू ने उत्तर दिया—

इश्क अलाह की जात है, इश्क अलाह का अंग।
इश्क अलाह औजूद है, इश्क अलाह का रंग ॥

उनके अनुयायियों ने दादू-पंथ के नाम से एक सम्प्रदाय की स्थापना की। इस पंथ में अनेक कवि हुए हैं। उनका अपना साहित्य है। भक्तमाल, जन्म लीला, सन्तगुण सागर आदि इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध धर्म-ग्रंथ हैं। सन् १६०२ में राजस्थान के नारना गाँव में दादू दयाल परलोक सिवारे।

दादू दयाल के प्रभु-भक्ति से सराबोर कुछ दोहे इस प्रकार हैं :—

अपनी अपनी जांतिसों, सबको बैसे पांति,
दादू सेवक रामका, ताकै नहीं भरांति ॥ १ ॥

सब देख्या हम सोधि करी, दूजा नाहि आन,
सब घट एके आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥ २ ॥

काहे को दुख दीजिये, सांई है सब मांहिं,
दादू एके आतमा, दूजा कोई नाहिं ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई दौड़े द्वारिका, कोई कासी जांहि,
कोई मथुरा को चलै, साहिब घट ही मांहि ॥ ५ ॥

दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त,
चित आवे सो लीजिये, यों साधु सुमिरे संत ॥ ६ ॥

सुख का साथी जगत सब, दुख का नाहिं कोइ,
दुख का साथी सांइयां, दादू सतगुरु होइ ॥ ६ ॥

मान सरोवर माहिं जल, प्यासा पीवे आइ,
दादू दोष न दीजिये, घर घर कहया न जाइ ॥ ७ ॥

घीव दूध में रमि रहया, व्यापक सबही ठौर,
दादू वकता बहुत है, मथि काढ़ें ते और ॥ ८ ॥

सबद दूध घृत रामरस, कोई साध विलोवणहार
दादू अमृत काढ़िले, गुरमुखि गहै विचार ॥ ६ ॥

दादू मन ऐसें भया, सतगुर के परसाद,
जहां कथा लगा तहां, छूटे बाद विबाद ॥ १० ॥

झूठे अन्धे गुरु घणे, बन्धे विखे विकार,
दादू साचा गुरु मिले, सनमुख सिरजन हार ॥ ११ ॥

राम, तुम्हारे नाँव विन, जे मुख निकसै और,
तो इस अपराधी जीव कों, तीन लोक कत ठौर ॥१२॥

दादू सब जग नीधना, धनवंता नहीं कोइ,
सो धनवंता जाणिये, जाकै जग राम पदारथ होइ ॥१३॥

दादू इस संसार में, मुझसा दुखी न कोइ,
पीव मिलन के कारणै, मैं जग मरिया रोइ ॥१४॥

साहिब मुखि बोलै नहीं, सेवक फिरे उदास,
यहु वेदन जिय में रहै, दुखिया दादू दास ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरसी मेहता

नरसी मेहेता हमारे देश में एक उच्च कोटि के सन्त हुए हैं। उन का जन्म सौराष्ट्र (गुजरात) में गिरनार पहाड़ियों की तराई में जूनागढ़ के स्थान पर हुआ था। उन्होंने युवा अवस्था में ही घर छोड़ दिया। वे प्रतिदिन महादेव के मन्दिर में जाकर पूजा करते थे। रात-दिन ध्यान-मग्न रहते थे। कुछ समय की कड़ी तपस्या के पश्चात् उनको प्रभु-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब से वह भगवान् श्रीकृष्ण के गुण गाने लगे। नरसी मेहता के सम्बन्धियों को यह मन्जूर न था। वह उसे परेशान करने लगे, परन्तु नरसी ने उनकी परवाह न की और वह अपनी धुन में लगे रहे।

एक बार कुछ अछूत माने जानेवाले व्यक्ति उनके पास आये और अपने निवास स्थान पर उनसे कीर्तन करने के लिए प्राथना की। नरसी मेहता ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और सारी रात एक चमार के घर कीर्तन करते रहे। उस ज़माने में छूआछूत का बहुत ज़ोर था। नगर के सवर्ण लोग नरसी के इस व्यवहार से बहुत दुखी हुए और उन्होंने उनसे प्रायश्चित्त करने को कहा। नरसी मेहता ने उनके आदेश को नम्रतापूर्वक ठुकरा दिया। उनको सबमें एक ही प्रभु का दर्शन होता था। ऊँच-नीच का भेद-भाव उन्हें मन्जूर न था।

नरसी मेहता के प्रभाती भजन बड़े प्रसिद्ध हैं। गांधी जी की प्रार्थना-सभाओं में उनका एक प्रभाती भजन बड़े चाव से गाया जाता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो बाद में सर्व-धर्म-प्रार्थना का एक अंग बना। आओ, हम उस भजन से अपनी अन्तरात्मा को पवित्र बनायें :

वैष्णव जन तो तेने कहीये,
जे पीड़ पराई जाणे रे।

पर दुःखे उपकार करे तोये,
मन अभिमान न आणे रे॥

सकल लोकमाँ सहुने बंदे,
निंदा न करे केनी रे।

वाच काछ मन निश्चल राखे,
धन धन जननी तेनी रे॥

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी
परस्त्री जेने मात रे।

जिह्वा थकी असत्य न बोले,
परधन नव झाले हाथ रे॥

मोह माया व्यापे नहिं जेने
दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।

रामनाम शुं ताली लागी,
सकल तीरथ तेना तनमां रे॥

वणलोभी ने कपटरहित छे,
काम क्रोध निवार्या रे।

भणे नरसैंयो तेनूं दरशन करतां,
कुल एकोतेर तार्या रे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द का जन्म १२ जनवरी, १८६३ को हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय के वह स्नातक थे। दर्शन-शास्त्र के विशेषज्ञ थे। स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर पहला प्रभाव उनकी माता का था। १२ वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने रामायण, महाभारत आदि महान् हिन्दू महाकाव्य पढ़ लिये थे। रामायण और महाभारत से ही उनके जीवन ने पलटा खाया था। उन्हीं दो ग्रन्थों से भारत के महान् पुरुषों की जीवन-शिक्षा द्वारा स्वामी विवेकानन्द को देश-सेवा की प्रेरणा मिली थी। समाज और मानवसेवा का आधार भी उनके लिए यही दो ग्रन्थ थे।

स्वामी विवेकानन्द का जन्मनाम 'नरेन्द्र' था। वह एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस के दर्शनों के लिए गये। मात्र दर्शन से ही उनके जीवन में निखार आ गया। उनको सच्चा गुरु मिल गया। गुरुभक्ति में उनका दृढ़ विश्वास था। नरेन्द्र अब नरेन्द्र नहीं रहे। विवेकशील व्यक्ति नरेन्द्र का नया नाम विवेकानन्द रखा गया। विवेकानन्द को विवेक में ही आनन्द आता था। स्वामी विवेकानन्द ने वेदों, उपनिषदों तथा गीता की शिक्षा को विश्व भर में घूम-घूमकर फैलाया। उनका विश्वास था कि भारत का नवनिर्माण गीता और भारतीय सन्तों और महापुरुषों द्वारा दी गयी शिक्षा से ही हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस ने उनके बारे में एक वार कहा था—"मेरे पास अनेक भक्त आये परन्तु विवेकानन्द जैसा दूसरा नहीं आया। कोई दस पंखुड़ीवाला कमल है, कोई पचास और कोई सौ वाला, परन्तु विवेकानन्द हज़ार पंखुड़ीवाले कमल के समान है। जहाँ दूसरे कुण्ड और तालाब हैं वहाँ विवेकानन्द जलसरोवर है।" श्री राम कृष्ण परमहंस की अपार कृपा और प्रेम के कारणवि वेकानन्द को पूर्ण सत्य, पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी विवेकानन्द देशप्रेम की प्रतिमूर्ति थे। भारतमाता की धूलि उनके लिए पूजा की सामग्री थी। उनका सन्देश भारत की एकता का सन्देश था। उनका विश्वास था कि स्वतन्त्रता विधान-सभाओं, लोक-सभाओं से नहीं, लोगों की अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति तथा चारित्र्य से ही प्राप्त हो सकेगी।

विवेकानन्द-विचारमाला

१. शक्ति जीवन है। कमज़ोरी मृत्यु है। शक्ति सुख-समृद्धि का भण्डार है। कमज़ोरी मानव-जीवन के लिए कभी न हटनेवाला बोझ और दुःख का भण्डार है। इसी का दूसरा नाम मृत्यु है।

२. मानव की आत्मा परमात्मा का ही एक रूप है। आत्मा पवित्र है, पूर्ण है। मानव को पापी मत कहो। यह मानवता पर एक लाञ्छन है। मनुष्य अमर, आत्मा पवित्र, स्वभाव शाश्वत आनन्द और मंगलमय है।

३. प्रतिज्ञा करो कि तुम किसी दूसरे को नहीं कोसोगे, किसी को बुरा नहीं कहोगे। दूसरों के गुण और अपने दोष देखो, यही सुचारु जीवन का पहला पाठ है।

४. उपहास, विरोध और स्वीकृति—प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति को इन तीनों अवस्थाओं में से गुज़रना पड़ता है। धीरज रखो, तुम्हारे अच्छे कामों की स्वीकृति तुम्हें जरूर मिलेगी।

५. प्रत्येक व्यक्ति महान् बन सकता है। इसलिए—

१. अच्छे काम करो तथा उनकी शक्ति पर विश्वास रखो।

२. मत्सर और सन्देह का त्याग करो।

३. जो नेक काम करना चाहते हैं उन सबकी सहायता करो।

६. जिस प्रकार भोजन के लिए पूर्व-तैयारी और श्रम आवश्यक है उसी प्रकार ईश्वर-प्राप्ति के लिए त्याग, तप और साधना की ज़रूरत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. जहाँ धर्म, वहीं त्याग। अपने लिए कुछ मत चाहो, दूसरों के लिए ही सब कुछ चाहो। सब के भले में तुम्हारा भला आ ही जायेगा।

८. हम तभी ऊपर उठेंगे, हम सर्वश्रेष्ठ तभी बनेंगे, हमारा प्रभाव तभी दूसरों पर पड़ेगा, जब हममें अहं का लेश मात्र भी नहीं रहेगा।

९. संसार को प्राणहीन एवं हास्यास्पद धर्मों की जरूरत नहीं, प्रेम और निःस्वार्थ भाव से भरपूर व्यक्तियों की ज़रूरत है।

१०. ईश्वर को ढूँढने कहाँ जाना है ? दुःखी, निर्बल और ग़रीब मनुष्य की पूजा करो। ईश्वरप्राप्ति हो जायेगी। गंगा के किनारे खड़े होकर कुआँ क्यों खोदते हो ?

११. पहले रोटी; फिर धर्म। जहाँ लोग भूखे हैं, वहाँ उनको धर्म-ज्ञान कहाँ अच्छा लगेगा ?

१२. मानवप्रेम ही मानवधर्म है। मेरा प्रचार वेदान्त की समता और आत्मा की व्यापकता के सत्य पर आधारित है।

१३. मनुष्य का अंतिम ध्येय सुख नहीं, अपितु ज्ञान है। भौतिक सुख विनाश का कारण है। आध्यात्मिक ज्ञान शाश्वत आनन्द देनेवाला है।

१४. प्रत्येक व्यक्ति सत्व, रज और तम के तीन गुणों से निर्मित है। तमोगुण में मनुष्य सुस्त पड़ जाता है। तम यानी अंधकार, कर्मशून्यता। रज यानी कर्मशीलता, उत्साह का प्रबल होना। भौतिक उछल-कूद, दौड़ धूप। सत्व अर्थात् संयम, मन का शान्तभाव धारण करना। कर्मयोग का सम्बन्ध इन तीन गुणों से आता है।

१५. सभी प्रकार के आलस्य का त्याग करना, कृपाशीलता अर्थात् सब प्रकार की दुर्बलताओं को दूर करना, संयम तथा शान्ति प्राप्त करना यह कर्मयोग है।

१६. स्वार्थ के लिए किया गया कर्म दुखदायक होता है। निःस्वार्थ-भाव से किया गया कर्म कल्याणकारी होता है। मुक्तभाव से कर्म करो, प्रेमसहित कर्म करो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१७. कर्मयोग का अर्थ है निःस्वार्थ भाव से सबकी सेवा करना। किये गये भले काम का अलंकार न करना। उसके सम्बन्ध में सोचना भी नहीं। आदर्श संन्यासी के जीवन की अपेक्षा आदर्श-गृहस्थ जीवन कठिन है, परन्तु वही सर्वश्रेष्ठ है।

१८. हमारा कर्त्तव्य क्या है? यह समझना कठिन है। जीवन-व्यवहार के फलाफल द्वारा ही हमें उसके सम्बन्ध में ज्ञान हो सकता है।

१९. 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्।' अर्थात् परोपकार ही पुण्य है और दूसरों को दुःख पहुँचाना ही पाप है।

२०. दूसरों के प्रति हमारे कर्त्तव्य का अर्थ है—दूसरों की सहायता करना, संसार की भलाई करना। संसार के उपकार में अपना उपकार आ ही जाता है।

२१. संसार न भला है, न बुरा। हमारी मानसिक अवस्था के अनुसार ही हमें यह संसार भला अथवा बुरा लगता है।

२२. कर्मफल ज़रूर मिलता है। अच्छा या बुरा फल कर्म के उद्देश्य पर निर्भर करता है।

२३. हम प्रत्येक क्षण बाध्य प्रकृति से संघर्ष करते रहते हैं। जीत से अभिप्राय है अमर पद पाना, हार का अर्थ है मृत्यु को प्राप्त होना।

२४. प्रवृत्ति का अर्थ है—किसी वस्तु से एक रूप हो जाना। गमन और दूरगमन। मैं और मेरे मन की भावना का दूसरा नाम है प्रवृत्ति। मैं नहीं, केवल तू ही तू है—यह निवृत्ति है। वृत्ति मात्र को निरन्तर कम करते जाना ही निवृत्ति है। निवृत्ति धर्म की नींव है।

२५. आसक्ति के भाव का त्याग किये बिना हम न सही ढंग से सोच सकते हैं, न कर सकते हैं।

२३. "सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति, न पंडिताः।" केवल अज्ञानी लोग ही यह कहते हैं कि कर्म तथा ज्ञान अलग-अलग हैं, ज्ञानी लोग नहीं कहते। कर्मयोग और ज्ञान-योग एक दूसरे के पूरक हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२७. प्राणिमात्र शारीरक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वाधीनता के कर्म में रत है। परन्तु यह संसार हमें सिखाता है कि सभी कार्यों का सद्व्यवहार किस प्रकार करना चाहिए।

२८. 'मैं' और 'मेरा' सम्पूर्ण क्लेश की जड़ है। अधिकार की भावना के साथ स्वार्थ भी आता है। स्वार्थ मनुष्य को अन्धा बना देता है। स्वार्थ से आसक्ति पैदा होती है। आसक्ति हमें दास बना देती है।

२९. कर्मयोग हमें यह सिखाता है कि हम संसार के सौन्दर्य का आनन्द उठायें, परन्तु हम उसके साथ एकाकार न हो जायें।

३०. कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग तथा ज्ञानयोग वेदांत के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। प्रत्येक मार्ग एक-दूसरे में ओत-प्रोत है। केवल प्रधानता, के अनुसार ही विभाग किये गये हैं।

३१. पूर्णरूपेण निःस्वार्थ होना, भौतिक पदार्थों की इच्छा न करना कीर्ति की इच्छा न रखना, कर्मयोग का बुनियादी सिद्धांत है।

३२. स्वस्थ, सामाजिक विचार से मज़बूत, तथा नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीवन प्रदान करनेवाला सारे विश्व को सद्-भावना, भाईचारे और शान्ति की चुनौती दे सकेगा।

३३. आपके पड़ोस में ग़रीब भिखारी के रूप में नारायण भूख से तड़प रहा है। क्या आप उसे खाना न खिलाकर, उसकी पूजा किये बिना, अपने तथा अपने परिवार के लालन-पालन में ही संतोष मानेंगे ?

३४. धर्म क्या है ? समर्पित जीवन। धर्म केवल त्याग और सेवा से ही पहचाना जाता है। भगवान् को दो बहुमूल्य भूषण समर्पण किये जा सकते हैं।

३५. भगवान् की पूजा कौनसे मन्दिर में की जाये ? मेरा उतर है—हम सब तीर्थयात्री हैं और हमारा तीर्थ है हमारा दैनिक त्याग। भगवान् की पूजा समर्पित जीवन से ही हो सकती है। यह हिन्दू-धर्म का सन्देश है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३६. आत्मा का सन्देश केवल भारत के लिए नहीं, कुल विश्व के लिए है।

३७. सच्चे प्रेम द्वारा ही हम अनासक्त हो सकते हैं। जहाँ आसक्ति है वहां केवल भौतिक आकर्षण है। आसक्ति कष्ट का कारण बन सकती है।

३८. अनासक्ति से ही प्रेम-साधना का लक्ष्य प्राप्त होता है। प्रेम-साधना मुक्ति का मार्ग है।

३९. संयम और पवित्रता स्त्री तथा पुरुष का सब से पहला धर्म है।

४०. माता का स्थान संसार में सब से ऊँचा है। माता का निःस्वार्थता को शिक्षा मिलती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांधी जी की सीख

सत्य ही ईश्वर है

गांधी जी ने हमें यह महामन्त्र दिया था। व्यापक सत्य की खोज के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य प्राणिमात्र में अपनी आत्मा को देखे। जो मनुष्य इस प्रकार के ऊँचे आदर्शों से प्रेरित हो, उसके लिए कठिन-से-कठिन जीवन-समस्या सहज हो जाती है। यदि गांधीजी सत्य के पुजारी न होते तो वे विश्व-मानव न बन सकें होते। मानव-जीवन में निरन्तर सत्य की खोज के अवसर प्राप्त होते ही रहते हैं। यही कारण है कि गांधी जी ने अपनी आत्मकथा का नाम ही 'सत्य के प्रयोग' रखा। सत्य ही धर्म है, सत्य ही ईश्वर है। ईश्वरीय जीवन सत्यनिष्ठ होता है। सत्यमय होता है। सत्य-आधारित होता है। "सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम्।"

आत्मा और परमात्मा एक है

गांधी जी की यह निष्ठा थी। गांधी जी प्रभु-आश्रित होकर जीवन व्यतीत करते थे। प्रभु-आदेश के अनुसार जीवन का कार्यक्रम चलाते थे। उसी एक दिव्य ज्योति से ज्योतिर्मय रहते थे। अपनी आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन किया करते थे। आत्म-शक्ति ही उनके लिए परमात्म-शक्ति थी। जब उनको किसी जीवन-तत्त्व के बारे में सन्देह होता था, तो वे अपनी आत्मा में ही गहरे पैंठते और उनको समाधान मिल जाता। आत्म-शुद्धि में उनका पूर्ण विश्वास था। ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र साधन उनके लिए आत्मशुद्धि था।

प्रेम ही ईश्वर है

गाँधी जी के सत्य के प्रयोग प्रेम के प्रयोग थे। जब मनुष्य सत्य में ही ईश्वर की पहचान कर लेता है, तो उसका प्रेम व्यापक हो जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। मनुष्य प्राणिमात्र से प्रेम करने लगता है। उसे सर्वत्र ईश्वर-दर्शन होने लगता है। उसका हृदय ईश्वर-प्रेम से भर जाता है। जब संकीर्णता और स्वार्थ नहीं रहते, जब मनुष्य अपनी आत्मा में सब की आत्मा को देखने का अभ्यस्त हो जाता है तब वह मानव-मात्र से एक-रूप हो जाता है। भयमुक्त हो जाता है। उसे अभयदान मिल जाता है। सत्य और प्रेम के कारण मनुष्य स्वयं स्वतन्त्र होकर अपने अड़ोस-पड़ोस के मानव-समुदाय को स्वतन्त्र बना देता है।

सत्याग्रह

सत्याग्रह जीने की कला का ऊँचा सिद्धान्त है। सत्याग्रह एक ऐसी शक्ति है जिसमें हिंसा का उपयोग नहीं होता। यह एक ऐसी शक्ति है जिसका प्रभाव सामनेवाले के चित्त पर होता है अर्थात् उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। सत्याग्रही वही हो सकता है जिमने अपना निरीक्षण कर लिया हो, जिसका उद्देश्य केवल सत्य की आराधना हो और जिसके मन, वचन और कर्म की पूर्णरूपेण शुद्धि हो गयी हो। सत्याग्रह एक अचूक नैतिक बल है। सत्याग्रह अर्थात् सत्य-विचार, सत्य-निष्ठा, सत्य-आचरण और सत्य-वीरता। सत्याग्रह में युक्ति से समझौते की बात आती है। सत्याग्रह का मार्ग अहिंसा का मार्ग है। केवल युक्ति से काम नहीं चलता, उसके साथ तप और त्याग की शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। सत्याग्रह के कार्यक्रम में जोर-जबरदस्ती नहीं होती। सत्याग्रही को अपनी पद्धति में पूर्ण विश्वास रखकर धैर्य से काम लेना होता है।

एकादश व्रत

जिन एकादश व्रतों के पालन ने गांधी जी को सर्वश्रेष्ठ विश्व-मानव बनाया, जिनके आचरण को उन्होंने अपनी प्रातःकालीन तथा सायं-कालीन प्रार्थना का एक अनिवार्य अंग बनाया, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. **सत्य**—सत्य ही परमेश्वर है, सत्य-विचार, सत्य-निष्ठा, सत्य-आचरण, सत्य के लिए आग्रह, ये उसके अंग हैं। जहाँ सत्य है वहाँ शुद्ध ज्ञान है। जहाँ शुद्ध ज्ञान है वहाँ आनन्द ही आनन्द है।

२. **अहिंसा**—सत्य की खोज का एक ही मार्ग, एक ही साधन अहिंसा है।

३. **ब्रह्मचर्य**—ब्रह्मचर्य का अर्थ है सत्य की खोज से सम्बन्ध रखने वाला जीवन आचरण। जननेन्द्रिय-संयम के अधूरे अर्थ को छोड़ कर सब इन्द्रियों के संयम अर्थात् मूल अर्थ को पकड़ना चाहिए।

४. **अस्वाद**--हम जो कुछ खायें या पियें वह केवल शरीर के रक्षण तथा पोषण के लिए हो, स्वाद के लिए न हो। तोले भर की जीभ छत्तीस पदार्थ चाहती है। जीभ के स्वाद को जीते विना ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता।

५. **अस्तेय**—हम अपनी अनिवार्य आवश्यकता के अतिरिक्त कुछ न लें, संग्रह न करें। यह संसार ईश्वर का बसाया हुआ है। यहाँ जो कुछ भोग-सामग्री है, वह सब ईश्वर की देन है। उसमें से ईश्वर के नाम से त्याग करके उसका हम उपभोग करें।

६. **अपरिग्रह**—विचार और स्वेच्छापूर्वक परिग्रह कम करते रहना चाहिए। परिग्रह कम होने पर सच्चे सुख और सन्तोष का आनन्द मिलता है। सेवा की वृत्ति बढ़ती है।

७. **अभय**—अर्थात् आत्मशक्ति। आत्म-शक्ति प्रभु-शक्ति का दूसरा रूप है। प्रभु-भक्त ज़ात-बिरादरी से, सरकार से, चोर से, मृत्यु से, किसी से भयभीत नहीं होता।

८. **अस्पृश्यता-निवारण**—छुआछूत एक कलंक है। छुआछूत हिन्दू-जाति में छिपी एक सड़न है। सड़न पहले राई के बराबर होती है, फिर पहाड़ बन कर विनाश का कारण बन जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. **शरीरश्रम**—जो भोजन करता है, कपडा पहनता है, मकान में रहता है, उसे भोजन-सामग्री पदा करनी चाहिए, कपड़ा तैयार करना चाहिए और मकान बनाना सीखना चाहिए। मनुष्य को अपने सभी काम खुद कर लेने चाहिए और बिना कारण दूसरों से सेवा नहीं लेनी चाहिए।

१०. **सर्वधर्म-एकता**—"धारणात् धर्मः" जो मनुष्य को धारण करता है अर्थात् जीवन को ऊँच-नीच में सँभाले रखता है, वही उसका धर्म है। सभी धर्मों का सार-तत्त्व मनुष्यों द्वारा हमारे सामने रखा गया है। मनुष्य चाहे कितना ऊँचा उठ गया हो, उसकी शक्ति सीमित होने के कारण उसके विचार में कुछ कमी रह सकती है। इसी विचार से गांधी जी ने हमें सर्वधर्म-समभाव की बात समझायी। हम जिस प्रकार अपने धर्म का आदर करते हैं, उसी प्रकार दूसरों के धर्म का भी करना चाहिए।

११. **स्वदेशी**—अड़ोस-पड़ोस में बसे कामगारों द्वारा बनायी गयी, जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करना स्वदेशी है। जो हाथ में आयी सेवा को छोड़कर दूर की सेवा के मोह में फँसता है, वह स्वदेशी व्रत को भंग करता है। स्वदेशी-आन्दोलन के समय विदेशी कपड़े का बहिष्कार करनेवालों के लिए तीन प्रतिज्ञाएँ थी :—

(क) हाथ कते-बुने कपड़े का उपयोग।

(ख) मिल के सूत से हाथ-बुने कपड़े का उपयोग।

(ग) देसी रूई से मिल कते-बुने कपड़े का उपयोग। गांधीजी पहली प्रतिज्ञा को ही आवश्यक मानते थे। यही उनका स्वदेशीव्रत का पालन था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकादश व्रत : सर्वधर्म सार

गांधीजी सामाजिक सेवा के साथ आध्यात्मिक मूल्यों को जोड़ देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपने जीवन में एकादश व्रत के पालन का निश्चय किया। आध्यात्मिक जीवन के लिए इन व्रतों का पालन ज़रूरी बताया तथा सामाजिक सेवा के लिए भी उतना ही आवश्यक माना।

व्रत-विचार का इतिहास बहुत पुराना है। जैन-धर्म में पंचयाम, बौद्ध धर्म में पंचशील, पतंजलि के योगसूत्र में पंच यम अर्थात् पाँच महाव्रतों का एक सूत्र है—"अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहा: यमा:"

१. अहिंसा

अहिंसा के दो प्रकार हैं—(१) व्यक्तिगत (२) सामूहिक। विकार-रहित अवस्था में व्यक्तिगत अहिंसा का लक्ष्य पूरा होता है। पूर्ण निर्विकारता अर्थात् आत्म-दर्शन। सहिष्णुता और आत्मीयता सामूहिक अहिंसा के दो आवश्यक अंग हैं। इसमें से जब प्रेम का उत्कर्ष होता है तब मनुष्य व्यापक बनता है। व्यापकता जब असीम होती है तब हरि-दर्शन होता है। वह है सामूहिक अहिंसा की पूर्णता।

विकार-मुक्त होना अहिंसा-व्रत के पालन के लिए ज़रूरी है। विकार से देहासक्ति पैदा होती है। देहासक्ति हिंसा का मूलकारण है। विकार-मुक्त व्यापक प्रेम से ही अहिंसा-व्रत का पालन सम्भव हो सकता है।

२. सत्य

जहाँ सत्य-ज्ञान रहता है, वहाँ विचार और आचार में अन्तर नहीं रहता। जिसे हम सत्य-ज्ञान मानते हैं, उसे हम आचरण में नहीं लाते, तो वह असत्य हो जाता है। सत्य से बढ़कर कोई शक्ति नहीं। सत्य ही परमेश्वर है। सत्य के बराबर कोई धर्म नहीं। सत्य को साक्षी मानकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया करते रहेंगे तो सत्य के साक्षात् दर्शन करेंगे। सत्य की शक्ति समत्व में है।

"सत्यमेव जयते नानृतम्।"

अन्तिम विजय सत्य की ही होती है। प्रेम-शक्ति बढ़ाने के लिए अपने सत्य का आग्रह न रखा जाय। यह गांधीजी की सीख है। वेद का का एक महावाक्य है—"एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।" सत्य एक है, ज्ञानीजन उसे नाना प्रकार से कहते हैं। सत्य और अहिंसा के आचरण के लिए मानसिक संशोधन आवश्यक है। आत्म-परीक्षण के लिए चित्त की मलिनता नहीं होनी चाहिए।

३. अस्तेय

अस्तेय का सही अर्थ है त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करना। अस्तेय का एक अर्थ है चोरी न करना। जो दूसरे के श्रम का शोषण करता है वह चोर है। जो समाज की कम से कम सेवा करके समाज से अधिक से अधिक लेता है वह चोर है। अस्तेय-व्रत यानी संन्यास-व्रत। समाज की अधिक से अधिक सेवा करके अपने लिए कम से कम लेना। समाज में साम्य लाना, यह अस्तेय है। संन्यास में सर्व प्रकार की आसक्ति का त्याग होता है, और चित्त में साम्य आता है।

४. ब्रह्मचर्य

गांधीजी ने कहा था—"ब्रह्मचर्य के बिना अहिंसा का पूर्ण पालन सम्भव नहीं। वैवाहिक जीवन में भी ब्रह्मचर्य सम्भव है। सब इन्द्रियों के संयम के बिना ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव नहीं।" मानसिक, शारीरिक, वाचिक तीनों प्रकार की स्वच्छता, यज्ञ, उपवास आदि ब्रह्मचर्य के साधन हैं। ब्रह्मचर्य में सारी साधना समायी हुई है। ब्रह्मविद्या के लिए यह नितांत आवश्यक है। इन्द्रियों का, स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार का निग्रह होने पर पूर्ण ब्रह्मचर्य की अवस्था प्राप्त होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. असंग्रह

असंग्रह यानी अपरिग्रह। अपरिग्रह का अर्थ है जीवन के लिए जो अत्यन्त आवश्यक हो, केवल उतने मात्र का परिग्रह। असंग्रह सुख का और संग्रह दुःख का साधन है। असंग्रह यानी शाश्वत आनंद का अनुभव। यदि एक जगह जीवन की आवश्यकताओं का संग्रह होगा तो दूसरी जगह उन वस्तुओं का अभाव रहेगा। यह प्रकृति का नियम है। कुछ लोग सुख चैन से रहें और कुछ लोग दुखी रहें, यह प्रकृति का नियम नहीं। गांधी जी ने "सादा जीवन, उच्च विचार" का मन्त्र हमें दिया था। असंग्रह व्रत का यही एक मात्र उपाय है।

६– शरीर-श्रम

शरीर-श्रम शरीर-यात्रा का अनिवार्य अंग है। शरीर-श्रम से समाज में समता, स्वास्थ्य और स्वावलम्बन सधता है। वर्ग-भेद मिटता है। प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को कम से कम ४ घण्टे प्रतिदिन उत्पादक शरीर-श्रम करना चाहिए। गांधीजी ने गीता के यज्ञ शब्द का अर्थ उत्पादक शरीर-श्रम बताया है। गांधीजी ने कहा था—"जो शरीर-श्रम न करे, उसे खाने का अधिकार नहीं।" अगर सारे मानव-समाज में श्रम-निष्ठा की भावना आ जाय, तो अमीर-गरीब, मालिक-मज़दूर, श्रमजीवी-बुद्धि-जीवी का भेद न रहे; सबको विकास का समान अवसर मिले। श्रम-निष्ठ जीवन से साम्य सम्भव है।

७. अस्वाद

अस्वाद का ब्रह्मचर्य से सीधा सम्बन्ध है। हम खाते हैं वह शरीर-रक्षण के लिए होना चाहिए। शरीर से दिन-रात काम लेते हैं, तो उसकी उचित सेवा भी होनी चाहिए। हम स्वाद के विचार से कुछ न खायें। स्वास्थ्य के विचार से, आहार को औषधि समझ कर उसका उपयोग करें। आहार-विज्ञान सबको मालूम होना चाहिए। अस्वाद-व्रत के पालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. अभय

सत्य, अहिंसा के पालन के लिए सब प्रकार के भय से मुक्त होना जरूरी है। मानवीय संस्कृति में अभय का सबसे ऊँचा स्थान है। गीता में आत्म-दर्शन और हरि-दर्शन का एक-मात्र मार्ग अभय बताया है तथा उसे दैवी गुणों में पहला स्थान दिया गया है। गांधीजी ने अभय का अर्थ बताया था—"न किसी से डरना, न किसी को डराना।" दूसरों को अभय-दान देनेवाला ही भय-मुक्त हो सकता है। भय के चार प्रकार हैं—शारीरिक, मानसिक, व्यक्तिगत और सामाजिक। निर्भय परन्तु नम्र व्यक्ति सत्य, अहिंसा का पालन कर सकता है। सत्याग्रह अर्थात् आत्म-बल अभय-व्रत का सबसे बड़ा साधन है।

९. सर्व-धर्म-समभाव

"धारणात् धर्मः" जो धारण कर सके, अर्थात् जो सदाचार और नैतिकता की कसौटी पर कसा जा सके, वह धर्म है।

शास्त्र अन्तिम सत्य नहीं हैं। सत्य असीम है, उसे सीमित कैसे किया जा सकता है? मनुष्य की बुद्धि भी सीमित है, उसे भी अन्तिम सत्य नहीं कहा जा सकता। धर्म मनुष्य को मनुष्य से प्रेम करना सिखाता है। धर्म उसे मानवीय समस्याओं के समाधान की शक्ति प्रदान करता है तथा आत्म-ज्ञान द्वारा प्रभु से एकरूप होना बताता है।

गांधीजी ने कहा था—"धर्म का आचरण ही उपासना है। उपासना में विरोध के लिए स्थान नहीं। सब धर्म स्वतन्त्र दृष्टि से पूर्ण हैं, अपनी-अपनी दृष्टि से पूर्ण हैं। अहिंसा हमें दूसरे धर्मों के प्रति समभाव सिखाती है। सत्य की आराधना भी हमें यही सिखाती है। सत्य की आराधना में अपने सत्य के लिए आग्रह की बात तो रहती ही नहीं। हमारा माना हुआ धर्म अपूर्ण है, उसमें परिवर्तन होता रहा है और होता रहेगा। सभी धर्म सच्चे हैं, परन्तु अपूर्ण हैं। इसलिए दोष के पात्र हैं। हमें सब धर्मों का आदर तथा श्रद्धापूर्वक अध्ययन करना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए" । समन्वय से सर्व-धर्म-समभाव का लक्ष्य सिद्ध होगा । 'तत्तु समन्वयात्', अर्थात् आप समन्वय से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे । तत्त्व-ज्ञान का समन्वय, व्यक्ति और समाज का समन्वय, देह और आत्मा का समन्वय ।

१०. स्वदेशी

स्वदेशी का सही अर्थ है स्वावलम्बन अथवा स्वधर्म । स्वदेशी विचार व्यक्ति, कुटुम्ब, गाँव से आरम्भ होकर सारे विश्व तक पहुँचता है । स्वदेशी संकुचित धर्म नहीं है, वह अत्यन्त व्यापक धर्म है । दया धर्म है । हमारे अड़ोस-पड़ोस में जीवन की जिन आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन होता है, उनका हम उपयोग करें, यही स्वदेशी-धर्म है । यही स्वधर्म है । 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'—स्वधर्म का पालन करते हुए मर जाना भी धर्म है ।

११. स्पर्श-भावना

छुआछूत हिन्दू-धर्म का कलंक है । उससे मुक्त होना हिन्दू-धर्म का परम कर्त्तव्य है । स्पर्श-भावना का सही अर्थ है ऊँच-नीच के भेद का निवारण ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्ति मार्ग

हम धार्मिक पुरुष बनें

धर्म क्या है ? यदि यह हमारी समझ में आ जाय और हमारे जीवन का आचरण उसके अनुसार हो जाय तो शान्ति मार्ग हमारे लिए सहज हो जायेगा।

मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं:—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध—धर्म के दस लक्षण हैं।

धर्म के दो प्रकार हैं—विधिरूप और निषेधरूप। सत्याचरण, समभाव आदि विधिरूप हैं; असत्याचरण से बचना, किसी की हिंसा नहीं करना आदि निषेधरूप धर्म हैं।

धारणात् धर्मः।

अर्थात् जो धारण करता है, वह धर्म है। जिससे मानव ठीक मार्ग पर चलता रहे, वही धर्म है।

हम आध्यात्मिक पुरुष बनें

हम सबको गुणवान् बनायें। सबके जीवन में अपना जीवन मानें। हममें जो परमात्मतत्व है, वह सब में है। हम सबसे प्यार करें। अणुशक्ति हमें डरा न सके। हमारे दिलों में युद्ध-राक्षस के लिए कोई स्थान न हो। सूर्य की किरणों के समान हम सब समदृष्टि बनें। हमारी एकता आध्यात्मिक एकता हो। हमारा जीवन जगजीवन हो। उत्तर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब एक हैं। शान्ति मार्ग हमारा लक्ष्य हो। सबके लिए शाश्वत शान्ति और आनन्द की प्रार्थना हम करते रहें।

भौतिक सुख में शान्ति नहीं। शान्ति आन्तरिक वस्तु है। शान्ति आत्मज्ञान का विषय है। केवल भौतिक विज्ञान दुःख और विनाश का कारण बन जाता है। विज्ञान के साथ आत्म-ज्ञान को जोड़ देने से सुख और शान्ति का शाश्वत आनन्द प्राप्त होता है। "अशान्तस्य कुतः सुखम्" अशान्त को सुख कहाँ ?

हम नैतिक पुरुष बनें

अनैतिकता से अशान्ति और नैतिकता से शान्ति के वातावरण का निर्माण होता है। नैतिकता के बिना जीवन की बुनियाद ही नहीं बनती। व्यक्ति और समाज की गाड़ी नैतिक आधार के बिना एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ती। देह और आत्मा के विकास के लिए भी नैतिक आधार जरूरी है। नैतिकता की पहली शिक्षा माता-पिता से मिलती है। नैतिक उत्थान से परिपूर्ण माता-पिता अपने बच्चों का नैतिक जीवन बनाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। मनुष्य का नैतिक जीवन बनाने में गुरु भी बड़ा काम करते हैं। उत्तम गुरु अपने शिष्यों से पहचाने जाते हैं। जिनके शिष्य उनसे आगे बढ़ गये, वे उत्तम गुरु माने जाते हैं। गुरु विकार-रहित होगा तो उसकी प्रभा के कारण शिष्य सत्य-ज्ञान को प्राप्त करेगा। शिष्य विकार-रहित होगा तो वह गुरु की प्रभा के फैला सकेगा।

लोकतन्त्र में लोक-प्रतिनिधि अपने व्यवहार से लोकतन्त्र को नैतिक अथवा अनैतिक बना सकते हैं। 'जैसा राजा वैसी प्रजा' वाली कहावत में बड़ा सार है। लोकतन्त्र में प्रजा ही राजा है। यह बात हमें नहीं भूलनी चाहिए। इसलिए लोक-मानस में नैतिकता आयेगी तो उसमें सच्ची शान्ति रहेगी।

दूसरे के छोटे गुण को बड़ा माना जाय। यह नैतिक दृष्टि हमें गांधी जी ने बतायी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम सत्यनिष्ठ बनें

सांच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप ।
जाके हिरदै सांच है ताके हिरदै आप ॥

पाप अशान्ति का कारण है । जीवन में असत्य-व्यवहार से बचते हैं, तो अशान्ति से बचते हैं ।

सत्यमेव जयते नानृतम् ।

सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं । जो असत्य अर्थात् पाप से बचता है, जिसका जीवन ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय का जीवन है, जो सोच समझकर शुभ संकल्प करता है, वह दिव्य शान्ति प्राप्त करता है और उसका संकल्प पूरा होता है ।

हम अहिंसा-व्रत का पालन करें

संसार के सभी धर्मों ने अहिंसा को परम धर्म माना है । अहिंसा ही शान्ति मार्ग है । भगवान् बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह, अशोक, महात्मा गान्धी आदि महापुरुषों ने समय-समय पर अहिंसा-व्रत के पालन पर ज़ोर दिया । गान्धीजी का पक्का विश्वास था कि वीरों की अहिंसा के द्वारा विदेशी आक्रमण का सामना भी किया जा सकता है, जैसा कि भारत में विदेशी परतन्त्रता का सफलतापूर्वक सामना किया गया । गान्धीजी ने कहा था—"अगर शस्त्रबन्दी के पागलपन के वेग को न रोका गया तो मानव-जाति का इतिहास ही नहीं रहेगा। जीत भी हार में बदल जायेगी ।" सर्वनाश से बचने का एक ही उपाय वीरों की अहिंसा है । अहिंसा से सभी मानवीय समस्याओं का हल हो सकता है । अहिंसा शस्त्र है और सत्य ढाल है । सत्य की खोज अहिंसा द्वारा ही की जा सकती है, हिंसा द्वारा नहीं । अहिंसा के बिना सत्य की खोज असम्भव है । अहिंसा सर्वोच्च प्रकार की सक्रिय शक्ति है । मानव-जाति अहिंसा के द्वारा ही छुटकारा पा सकती है । अहिंसा का अर्थ है विश्व-प्रेम । सत्य और अहिंसा की जितनी अनुभूति होगी उतना ही ज्ञान बढ़ेगा । इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान का जितना आचरण बढ़ेगा, विश्व-प्रेम उतना सहज हो जायेगा।

हम शब्दशक्ति का संयम बढ़ायें

शब्दशक्ति के दो रूप हैं—लेखन-शक्ति और वाक्शक्ति। हम शब्द-शक्ति से मित्र और शत्रु दोनों बना सकते हैं। शब्द-शक्ति का संयम बहुत बड़ी साधना है। हमारी शब्दशक्ति में मित्र बनाने की कला रहेगी तो हमारे अड़ोस-पड़ोस में शान्ति रहेगी।

दुनिया में दो शक्तियाँ हैं—शब्दशक्ति और शस्त्रशक्ति। शब्दशक्ति अगर सत्यनिष्ठ, मौननिष्ठ और शम-शील रहेगी तो वह शस्त्रशक्ति से श्रेष्ठ रहेगी। हम ऐसा वचन बोलें जो दूसरों को बुरा न लगे, जो सत्य हो, जो प्रिय हो, जो हितकारी हो।

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, तज दे वचन कठोर॥

हम समन्वय सीखें

तत्तु समन्वयात्

समन्वय से ज्ञान की प्राप्ति होती है। संसार में अनेक धर्म हैं। उनमें तत्त्वज्ञान भरे पड़े हैं। तत्त्वज्ञान का विरोध होता है तो अशान्ति बढ़ती है। तत्त्वज्ञानों का समन्वय होता है तो शान्ति के वातावरण का निर्माण होता है। व्यक्ति और समाज का समन्वय होता है तो सामाजिक भाईचारे की भावना पैदा होती है। इसके विपरीत व्यक्ति-व्यक्ति, समूह समूह और समाज-समाज में द्वेष और कलह उत्पन्न होकर एक-दूसरे के विनाश के कारणों का निर्माण होता है। शान्तिमार्ग के लिए देह और आत्मा का समन्वय भी आवश्यक है। मानव-जीवन के दो मूल्य माने गये हैं—न्याय की रक्षा और शान्ति की रक्षा। दोनों का समन्वय अर्थात् ज्ञान और कर्म का समन्वय है। गीता समन्वय का उत्तम ग्रंथ है। ज्ञान-योग, भक्ति-योग, कर्म-योग, अनासक्ति-योग चारों के समन्वय से साम्य-योग बनता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुति-स्मृति का समन्वय, धर्म-ग्रंथों के तत्त्वज्ञानों का समन्वय, अनेक पन्थों तथा उपासनाओं का समन्वय, सत्य, प्रेम, करुणा का समन्वय। आज विश्व को समन्वयकारी धर्मक्रान्ति की आवश्यकता है। अणुओं का समन्वय होता है तो उसमें से असीम शक्ति मिलती है। एक-एक पत्थर से पर्वत बनता है। एक-एक बूँद से समुद्र बनता है। यह है समन्वय का चमत्कार।

हम अनासक्त बनें

गांधी जी ने अनासक्ति को शान्ति का मार्ग बताया। इसके बिना आत्मविकास असम्भव है। धन, सम्पत्ति, परिवार, सत्ता आदि किसी की आसक्ति न हो। कुल संसार को अपना परिवार बनायें। परिवार में आसक्ति होती है और सहज प्रेम भी। आसक्ति का त्याग करें, प्रेम को पकड़ लें। प्रेम में भी आसक्ति न हो। अनासक्तियोग जिसे सध गया, उसे शान्तिमार्ग सध गया। अनासक्तियोग अर्थात् संन्यास-मार्ग। संन्यास में सब प्रकार की आसक्ति का त्याग होता है। अनासक्ति से चित्त में साम्य आता है। साम्य से शान्ति प्राप्त होती है।

चित्त की स्थिरता शान्तिमार्ग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। चित्त तब स्थिर होता है जब वह निर्मल होता है। चित्त का मैल अशान्ति का कारण बनता है। चित्त के मैल के कारण ही दुःख होता है। चित्त प्रसन्न होने पर सहज शन्ति मिलती है।

हम प्रसन्न-चित्त बनें

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते

—गीता २।६५

प्रसन्नचित्त पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही उत्तम रीति से स्थिर हो जाती है। सत्यकार्य, पुण्यकार्य, धर्मकार्य के निरन्तर अभ्यास से चित्त के स्थिर होने में मदद मिलती है, परन्तु इन कार्यों का चित्त पर प्रभाव न हो। किसी वस्तु के अभाव में चित्त दुखी न हो। अच्छी सूझ-बूझ और अभ्यास से स्थिरता सधेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम सहजीवी बनें

शान्तिमार्ग के लिए सहजीवन ज़रूरी है। जो कार्यकर्त्ता एकसाथ काम करते हैं, गाँव में जो लोग एकसाथ रहते हैं, समाज में जो व्यक्ति साथ-साथ हैं, उनका काम इसलिए आगे नहीं बढ़ता कि वे अहंभावी हैं। यदि सब अपना-अपना अहंभाव छोड़ दें, सब सबकी सेवा करें, अपनी आत्मा में सब की आत्मा को देखें, सब मिलकर सहजीवन के विचार से जीवन व्यतीत करें, तो उनके सेवाकार्य का प्रभावशाली दर्शन होगा। गाँव के लोग ग्रामदान के विचार को मान लें, ग्रामसभा बनायें, गाँव के सारे काम सर्वसम्मति अथवा सर्वानुमति से करें, ग्रामकोष खड़ा करें, एक-दूसरे से मिलकर काम करें, पैदावार बढ़ायें और मिल-बाँट कर खायें, गाँव में कोई बिना-ज़मीन न रहे, कोई भूखा न रहे, कोई नंगा न रहे, सबको काम-धन्धा मिले तो गाँव का स्वरूप निखरेगा। व्यक्ति अपना अहंभाव छोड़ दे, अपने आपको समाज का एक अंग माने, और समाज व्यक्ति का आदर करे; इस प्रकार व्यक्ति और समाज के समन्वय से मानव-जीवन में निखार आयेगा।

गीता सहजीवन की शिक्षा देनेवाला सबसे उत्तम ग्रन्थ है। उसमें देह और आत्मा, व्यक्ति और समाज के समन्वय का बहुत सुन्दर वर्णन है। बाईबल में पड़ोसी से प्यार करने की बात कही गयी है। मानवसेवा को ही प्रभुभक्ति का दर्जा दिया गया है। 'पहाड़ी सन्देश' से बढ़कर मानवसेवा का और क्या सन्देश हो सकता है। गीता में सामनेवाले को भगवान् का स्वरूप मानकर सेवा करने के लिए कहा गया है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म-समन्वय की कुंजी

यथाशक्ति विविध धर्मों का अध्ययन करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि सब धर्मों का समन्वय करना यदि उचित और आवश्यक है, तो उन सबकी एक महान् कुंजी होनी चाहिए, और वह कुंजी है सत्य और अहिंसा।

इस कुंजी से जब मैं किसी धर्म की पेटी खोलता हूँ तो मुझे एक धर्म का दूसरे धर्म से समन्वय करने में जरा भी कठिनाई नहीं आती। यद्यपि वृक्षों के पत्तों की तरह सब धर्म अलग-अलग नजर आते हैं, मगर जड़ को देखा जाय तो एक ही दिखाई देते हैं।

मो. क. गांधी

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

मूल्य

दो रुपया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi